Visit Dwarkadheeshvastu.com For
FREE Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers
****
All Music is also available in CD format. CD Cover can also be print with your Firm Name
****
We also provide this whole Music and Data in PENDRIVE and EXTERNAL HARD DISK.
Contact : Ankit Mishra ( +91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com )

।। श्रीहरिः ।।

# तीस रोचक कथाएँ

॥ श्रीहरिः ॥

# विषय-सूची


| विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| १. गायका मूल्य | ५ |
| २. ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य | ८ |
| ३. भगवान् विष्णुकी आराधना एवं एकादशीव्रतकी महिमा | १० |
| ४. सत्संग एवं भगवान्‌के चरणोदककी महिमा | १६ |
| ५. कुसंगका दुष्परिणाम | २० |
| ६. पुण्यसलिला भगवती गंगा | २४ |
| ७. श्रीदुर्गासप्तशतीकी संक्षिप्त कथा | २७ |
| ८. जडभरत और सौवीर-नरेशका संवाद | ३७ |
| ९. भगवान् सूर्यका परिवार | ४५ |
| १०. भक्तिसे सर्वातिशायी सामर्थ्य | ४८ |
| ११. रुद्रावतार नन्दीश्वर | ५० |
| १२. महर्षि वसिष्ठकी क्षमाशीलता | ५३ |
| १३. संगीतसे भगवत्प्राप्ति | ५६ |
| १४. द्वादशाक्षर-मन्त्रकी महिमा | ६१ |
| १५. विश्वासकी विजय | ६३ |
| १६. भगवान् नारायणकी सर्वव्यापकता | ६५ |
| १७. गणेशजीकी उत्पत्तिका प्रसंग और चतुर्थी-तिथिका माहात्म्य | ६९ |
| १८. दीर्घायुष्य एवं मोक्षके हेतुभूत भगवान् शंकरकी आराधना | ७३ |
| १९. भारतके कुमारिकाखण्डकी कथा | ७६ |
| २०. श्राद्धकर्मकी महिमा | ७९ |
| २१. मदनद्वादशीव्रतका अद्‌भुत प्रभाव | ८४ |
| २२. नागपंचमी-व्रत-माहात्म्य | ८७ |
| २३. नृपश्रेष्ठ वरेण्यपर भगवान् गजाननकी कृपा | ९२ |
| २४. भगवान् श्रीरामका एकाग्र-क्षेत्रीय अश्वमेध-यज्ञ | ९६ |
| २५. सक्तुप्रस्थीय मौद्‌गल्यो-पाख्यान | ९९ |
| २६. दानधर्मके आदर्श | १०५ |
| २७. न्यायमार्गसे लाभ | १०९ |
| २८. पूज्य सदैव सम्माननीय | १११ |
| २९. गुरुभक्तके देवता भी सहायक | ११९ |
| ३०. एक सदाचार-कथा | १२५ |

# गायका मूल्य

एक बार महर्षि आपस्तम्बने जलमें ही डूबे रहकर भगवद्भजन करनेका विचार किया। वे बारह वर्षोंतक नर्मदा और मत्स्या-संगमके जलमें डूबकर भगवत्स्मरण करते रह गये। जलमें रहनेवाले जीवोंके वे बड़े प्रिय हो गये थे। तदनन्तर एक समय मछली पकड़नेवाले बहुत-से मल्लाह वहाँ आये। उन्होंने वहाँ जाल फैलाया और मछलियोंके साथ महर्षिको भी खींच लाये। मल्लाहोंकी दृष्टि मुनिपर पड़ी तो वे भयसे व्याकुल हो उठे और उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा माँगने लगे।

मुनिने देखा कि इन मल्लाहोंद्वारा यहाँकी मछलियोंका बड़ा भारी संहार हो रहा है; अतः सोचने लगे—'अहो! स्वतन्त्र प्राणियोंके प्रति यह निर्दयतापूर्ण अत्याचार और स्वार्थके लिये उनका बलिदान—कैसे शोककी बात है! भेददृष्टि रखनेवाले जीवोंके द्वारा दुःखमें डाले गये प्राणियोंकी ओर जो ध्यान नहीं देता, उससे बढ़कर क्रूर इस संसारमें दूसरा कौन है? ज्ञानियोंमें भी जो केवल अपने ही हितमें तत्पर है, वह श्रेष्ठ नहीं है; क्योंकि ज्ञानी पुरुष भी जब स्वार्थका आश्रय लेकर ध्यानमें स्थित होते हैं, तब इस जगत्के दुखी प्राणी किसकी शरण जायँ? जो मनुष्य स्वयं अकेला ही सुख भोगना चाहता है, मुमुक्षुजन उसे पापीसे भी महापापी बतलाते हैं। वह कौन-सा उपाय है, जिससे इनका सारा पाप-ताप मेरे ऊपर आ जाय और मेरे पास जो कुछ भी पुण्य हो, वह इनके पास चला जाय? इन दरिद्र, विकलांग, दुखी प्राणियोंको देखकर भी जिसके हृदयमें दया नहीं उत्पन्न होती, वह मनुष्य नहीं, राक्षस है। जो समर्थ होकर भी संकटापन्न

भयविह्वल प्राणियोंकी रक्षा नहीं करता, वह उनके पापोंको भोगता है; इसलिये जो कुछ हो, मैं इन मछलियोंको दुःखसे मुक्त करनेका कार्य छोड़कर मुक्तिको भी वरण नहीं करूँगा, स्वर्गलोककी तो बात ही क्या है।'

इधर यह विचित्र समाचार वहाँके राजा नाभागको मिला। वे भी अपने मन्त्री-पुरोहितोंके साथ दौड़े घटनास्थलपर पहुँचे। उन्होंने देवतुल्य महर्षिकी पूजा की और पूछा—'महाराज! मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ?'

आपस्तम्ब बोले—'राजन्! ये मल्लाह बड़े दुःखसे जीविका चलाते हैं। इन्होंने मुझे जलसे बाहर निकालकर बड़ा भारी श्रम किया है। अतः जो मेरा उचित मूल्य हो, वह इन्हें दो।' नाभागने कहा—'मैं इन मल्लाहोंको आपके बदले एक लाख स्वर्णमुद्राएँ देता हूँ।'

महर्षिने कहा—'मेरा मूल्य एक लाख मुद्राएँ ही नियत करना उचित नहीं है। मेरे योग्य जो मूल्य हो, वह इन्हें अर्पण करो।' नाभाग बोले—'तो इन निषादोंको एक करोड़ दे दिया जाय या और अधिक भी दिया जा सकता है।' महर्षिने कहा—'तुम ऋषियोंके साथ विचार करो, कोटि-मुद्राएँ या तुम्हारा राज्यपाट—यह सब मेरा उचित मूल्य नहीं है।'

महर्षिकी बात सुनकर मन्त्रियों और पुरोहितोंके साथ राजा बड़ी चिन्तामें पड़ गये। इसी समय महातपस्वी लोमश ऋषि वहाँ आ गये। उन्होंने कहा—'राजन्! भय न करो। मैं मुनिको संतुष्ट कर लूँगा। तुम इनके लिये मूल्यके रूपमें एक गौ दो; क्योंकि ब्राह्मण सब वर्णोंमें उत्तम हैं। उनका और गौओंका

कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता।'

लोमशजीकी यह बात सुनकर नाभाग बड़े प्रसन्न हुए और हर्षमें भरकर बोले—'भगवन्! उठिये, उठिये; यह आपके लिये योग्यतम मूल्य उपस्थित किया गया है।'

महर्षिने कहा—'अब मैं प्रसन्नतापूर्वक उठता हूँ। मैं गौसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा मूल्य नहीं देखता, जो परम पवित्र और पापनाशक हो। यज्ञका आदि, अन्त और मध्य गौओंको ही बताया गया है। ये दूध, दही, घी और अमृत—सब कुछ देती हैं। ये गौएँ स्वर्गलोकमें जानेके लिये सोपान हैं। अस्तु, अब ये निषाद इन जलचारी मछलियोंके साथ सीधे स्वर्गमें जायँ। मैं नरकको देखूँ या स्वर्गमें निवास करूँ, किंतु मेरे द्वारा जो कुछ भी पुण्यकर्म बना हो, उससे ये सभी दुःखार्त्त प्राणी शुभ गतिको प्राप्त हों।'

तदनन्तर महर्षिके सत्संकल्प एवं तेजोमयी वाणीके प्रभावसे सभी मछलियाँ और मल्लाह स्वर्गलोकमें चले गये। विभिन्न प्रकारके उपदेशोंद्वारा लोमशजी तथा आपस्तम्बजीने राजाको बोध प्राप्त कराया और राजाने भी धर्ममयी बुद्धि अपनायी। अन्तमें दोनों महर्षि अपने-अपने आश्रमको चले गये।

(स्कन्दपुराण)

~~O~~

# ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य

महर्षि याज्ञवल्क्यका शास्त्रज्ञान और ब्रह्मज्ञान अपूर्व है। यज्ञवल्ककके वंशज होनेके कारण इनका नाम याज्ञवल्क्य पड़ा। इनके पिताका नाम ब्रह्मा था।

एक बार राजा जनकने यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें हजारों ऋषि पधारे। राजा जनकने यह जानना चाहा कि उपस्थित ऋषियोंमें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी कौन हैं? इसके लिये राजाने एक उपाय किया। उन्होंने एक हजार गौओंको गोशालामें रोक लिया। प्रत्येक गायके सींगोंमें दस-दस पाद सुवर्ण बँधे हुए थे। राजाने हाथ जोड़कर ऋषियोंसे कहा—'मैं आपलोगोंकी शरणमें हूँ। आप सब-के-सब महान् हैं। मैं चाहता हूँ कि आपलोगोंमें जो सबसे बड़े ब्रह्मनिष्ठ हों, वे इन गौओंको ले जायँ।' सभी विद्वान् थे, सभी ज्ञानी थे। प्रत्येकने चाहा कि यह धन हमें मिले, किंतु किसी ब्राह्मणका साहस नहीं हुआ। तब महर्षि याज्ञवल्क्यने अपने ब्रह्मचारीको आदेश दिया कि 'इन गौओंको हाँक ले चलो।'

यह सुनकर उपस्थित ब्राह्मणोंमें हलचल मच गयी। सब कह रहे थे कि यह हम सबमें अपनेको ब्रह्मनिष्ठ कैसे कह रहा है? विदेहराज जनकके होता आश्वलने पूछा—'याज्ञवल्क्य! क्या हम लोगोंमें तुम्हीं ब्रह्मनिष्ठ हो? 'याज्ञवल्क्यने कहा—'ब्रह्मनिष्ठको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं तो गौओंकी ही इच्छा करता हूँ।' लोगोंमें क्रोधका संचार बढ़ता गया। याज्ञवल्क्यने प्रसन्नताके साथ कहा—'आपलोग क्रोध न करें। जो चाहें, मुझसे प्रश्न करें।'

फिर तो एक ओर सारे ऋषि हो गये और दूसरी ओर अकेले याज्ञवल्क्य। एक-एक कर ऋषियोंने याज्ञवल्क्यसे गहन-से-गहन प्रश्न पूछा। महर्षि याज्ञवल्क्यने सबका सटीक उत्तर दिया। उसके बाद याज्ञवल्क्यजीकी बारी आयी। इन्होंने पृथक्-पृथक् प्रश्न पूछे, किंतु उनमेंसे एकने भी कोई उत्तर नहीं दिया।

उनमें शाकल्य प्रधान थे। वे बहुत क्रुद्ध हुए और बोले—'तुम हमलोगोंको तुच्छ समझकर सब धन अकेले हड़प लेना चाहते हो। मेरे प्रश्नोंका तो उत्तर दो।' महर्षि याज्ञवल्क्यने उनके सभी प्रश्नोंका सटीक उत्तर दिया। याज्ञवल्क्यजी उत्तर देते जाते और शाकल्य भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछते जाते। तब याज्ञवल्क्यजीने कहा—'तुमने तो हजारों प्रश्न कर लिये, पर अब तुम मेरे एक प्रश्नका उत्तर दो।' याज्ञवल्क्यजीके उस गहन प्रश्नका समाधान न हो सका, अतः शाकल्य वहीं ढेर हो गये। तब सब लोग डरकर चुप हो गये।

प्रश्नोत्तर समस्याके समाधानके लिये होना चाहिये, विवादके लिये नहीं। शाकल्यको उत्तर पाकर संतुष्ट होकर सत्य वस्तुको मान लेना चाहिये था; क्योंकि वाद सत्य अर्थके बोधके लिये ही होता है। इस कथासे यह शिक्षा मिलती है कि वादसे जब सत्यका पता लग जाय, तब झट उसे स्वीकार कर लेना चाहिये, भले ही उससे अपना पुराना मत खण्डित होता हो।

(वायुपुराण)

# भगवान् विष्णुकी आराधना एवं एकादशी-व्रतकी महिमा

प्राचीन कालमें रुक्मांगद नामक एक प्रसिद्ध सार्वभौम नरेश थे। भगवान् विष्णुकी आराधना ही उनका जीवन था। वे चराचर-जगत्‌में अपने आराध्य भगवान् हृषीकेशके दर्शन करते तथा पद्मनाभ भगवान्‌की सेवाकी भावनासे ही अपने राज्यका संचालन करते थे। वे सभी प्राणियोंपर क्षमाभाव रखते थे।

राजा रुक्मांगदने अपने जीवनमें अपनी समस्त प्रजा एवं परिवारसहित एकादशी-व्रतके अनुष्ठानका नियम धारण कर रखा था। एकादशीके दिन राज्यकी ओरसे घोषणा होती थी कि 'आज एकादशीके दिन आठ वर्षसे अधिक और पचासी वर्षसे कम आयुवाला जो भी मनुष्य अन्न खायेगा, वह राजाकी ओरसे दण्डनीय होगा।' एकादशीके दिन सभी लोग गंगास्नान एवं दान-पुण्य करते थे। राजाके धर्मकी ध्वजा सर्वत्र फहराने लगी। धर्मके प्रभावसे प्रजा सर्वथा सुखी एवं समृद्ध थी।

राजा रुक्मांगदका गृहस्थ-जीवन पूर्णरूपसे सुखमय था। वे पीताम्बरधारी भगवान् श्रीहरिकी आराधना करते हुए मनुष्यलोकके उत्तम भोग भोग रहे थे। उनकी पतिव्रता पत्नी संध्यावली साक्षात् भगवती लक्ष्मीका दूसरा रूप थी। वह सभी दृष्टिसे पतिका सुख-सम्पादन करनेमें अद्वितीय थी। पतिका सुख ही रानी संध्यावलीका जीवन था। पतिकी सेवा वह अपने हाथोंसे करती थी।

उनका पुत्र धर्मांगद गुणोंमें अपने पिताके अनुरूप ही था। उसकी भी बुद्धि भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें लग गयी थी। वह अपने माता-पिताका आज्ञाकारी था। उसमें राज्य-संचालनकी

पूर्ण योग्यता थी तथा मदिरा एवं जुआ आदिका कोई दुर्व्यसन न था। वह भी प्रजापालन एवं प्रजाकी रक्षामें सदा तत्पर रहता था। राजा रुक्मांगदने अपने पुत्र धर्मांगदके गुणोंसे प्रसन्न होकर राज्य-संचालनका भार उसके कन्धोंपर देना आरम्भ कर दिया।

धर्मांगद अपने सेवकोंसे हाथीके मस्तकपर नगाड़े बजाते हुए घोषणा कराता कि 'समस्त प्रजा एकादशीका व्रत पालन करनेमें तत्पर रहे तथा ममतारहित होकर देवेश्वर भगवान् विष्णुका चिन्तन करे।'

भगवान् श्रीहरिके आराधन एवं एकादशी-व्रतके प्रभावसे राज्यमें समस्त प्रजा सुखी थी। मृत्युके पश्चात् सभी वैकुण्ठधाममें जाने लगे। नरकके द्वारतक कोई जाता ही नहीं था। सम्पूर्ण नरक सूना हो गया। सूर्यपुत्र यमराज एवं चित्रगुप्त—दोनोंके लिये कोई कार्य रहा ही नहीं। जब सभी प्रजाजन वैकुण्ठ जाने लगे, तब यमराज किन्हें दण्ड दें और चित्रगुप्त किनके कर्मोंका हिसाब रखें। अन्तमें वे ब्रह्माजीकी सभामें पहुँचे। उन्होंने ब्रह्माजीसे राजा रुक्मांगदके प्रभावका वर्णन करते हुए कहा—'पितामह! भगवान् विष्णुके आराधन एवं एकादशी-व्रतके प्रभावसे समस्त प्राणी वैकुण्ठ-धामको प्राप्त हो रहे हैं। नरकमें कोई प्राणी नहीं आ रहा है। लम्बे समयसे हमलोग व्यर्थ बैठे हैं। यह सुनकर ब्रह्माजीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वे मन-ही-मन भक्तराज रुक्मांगदको नमन करने लगे। ब्रह्माजी रुक्मांगदकी ऐसी अद्भुत महिमाको और बढ़ाना चाहते थे। उन्होंने अपने मनके संकल्पसे एक अत्यन्त सुन्दर एवं लावण्यवती नारीको प्रकट किया। उस नारीका नाम मोहिनी था। वह संसारकी समस्त सुन्दरियोंमें श्रेष्ठ एवं रूपके वैभवसे सम्पन्न थी।'

एक दिन राजा रुक्मांगद वन-भ्रमणके लिये निकले हुए थे। उसी वनमें वह मोहिनी अत्यन्त मधुर वीणा बजा रही थी। उस रूपराशिको देखकर राजा रुक्मांगद मोहित हो गये। राजाने मोहिनीसे प्रणयकी याचना की। मोहिनीने मुसकराते हुए एक शर्त रखी कि 'समयपर मैं जो कहूँ आपको उसका पालन करना होगा।' राजाने मोहके वशीभूत होकर वह शर्त स्वीकार कर ली और वे मोहिनीके साथ अपनी राजधानीको लौट आये। यहाँ वे मोहिनीके साथ सुखसे समय व्यतीत करने लगे।

युवराज धर्मांगदने शासनकी पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली थी। उसने भूमण्डलके सभी मण्डलोंको जीतकर उनपर अपना शासन जमा लिया तथा अनेक बहुमूल्य रत्न-मणियाँ लाकर अपने पिताको अर्पित किया। धर्मांगदके सुराज्यसे प्रसन्न होकर रुक्मांगदने अपनी सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था उसे सौंप दी। योग्य कन्यासे धर्मांगदका विधिपूर्वक विवाह हुआ।

ब्रह्माजीने मोहिनीको राजा रुक्मांगदकी परीक्षाके लिये ही भेजा था। सुखपूर्वक बहुत समय व्यतीत होनेपर एक दिन वह अवसर आ उपस्थित हुआ। रुक्मांगदका एकादशी-व्रत निर्विघ्न चल रहा था। वे एकादशीके दिन कभी अन्न ग्रहण नहीं करते थे। सदैवकी भाँति वे घोषणा करा देते—'मनुष्यो! तुम सब अपने वैभवके अनुसार एकादशीके दिन चक्र-सुदर्शनधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करो। वस्त्र, उत्तम चन्दन, रोली, पुष्प, धूप, दीप तथा हृदयको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले सुन्दर फल एवं उत्तम गन्धके द्वारा भगवान् श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी अर्चना करो। जो भगवान् विष्णुका लोक प्रदान करनेवाले मेरे इस धर्मसम्मत वचनका पालन नहीं करेगा, निश्चय ही उसे कठोर दण्ड दिया जायगा।'

एक दिन मोहिनी अपने पति रुक्मांगदसे एकादशीके दिन अन्न खानेके लिये आग्रह करने लगी। उसने हठपूर्वक कहा कि 'गृहस्थ राजाको जो सदैव परिश्रम करता है, कभी भी अन्न नहीं छोड़ना चाहिये।' राजाने मोहिनीको बहुत समझाया। उन्होंने शास्त्रोंका प्रमाण देकर बताया कि एकादशीके दिन जो अन्न खाता है, वह पापका भागी और नरकगामी होता है, किंतु मोहिनी अपने हठपर अटल रही। राजाने उसे अनेक प्रलोभन भी दिये, परंतु मोहिनीपर उन बातोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मोहिनी राजाको विवाहके समय की हुई अपनी शर्तकी स्मृति करायी कि 'जो मैं कहूँगी उसे आपको पालन करना होगा अन्यथा असत्यवादी हो जायँगे एवं सत्यका त्याग करनेसे आपको पापका भागी होना पड़ेगा।' मोहिनीने अन्तमें यह भी घोषणा की कि 'यदि आप एकादशीके दिन अन्न ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं आपको त्यागकर चली जाऊँगी।'

रुक्मांगदने मोहिनीको पुनः समझाते हुए पुराणोंका प्रमाण दिया और कहा कि पुराणोंमें स्थान-स्थानपर यह घोषणा की गयी है कि 'एकादशी प्राप्त होनेपर भोजन नहीं करना चाहिये, नहीं करना चाहिये।' परंतु मोहिनी अपने निश्चयपर अटल रही। वह अपने पतिको असत्यवादी घोषित करती हुई उन्हें छोड़कर जानेको तत्पर थी। इधर राजा रुक्मांगद मोहिनीपर आसक्त होते हुए भी एकादशीके दिन अन्न न ग्रहण करनेके निश्चयपर दृढ़ थे।

पितृभक्त धर्मांगद एवं पतिव्रता रानी संध्यावलीने मोहिनीको राजाको छोड़कर न जानेके लिये बहुत समझाया। रानी संध्यावलीने अत्यन्त मधुर वाणीमें मोहिनीसे कहा—'जो नारी सदा अपने पतिकी आज्ञाका पालन करती है, उसे सावित्रीके समान अक्षय तथा निर्मल लोक प्राप्त होते हैं। देवि! तुम अपना यह आग्रह छोड़

दो। महाराजने कभी बचपनमें भी एकादशीके दिन अन्न ग्रहण नहीं किया है। अतः तुम इसके लिये उन्हें बाध्य मत करो। तुम उनसे कोई अन्य वर माँग लो।'

'देवि! जो वचनसे और शपथ-दोषसे पतिको विवश करके उनसे न करनेयोग्य कार्य करा लेती है, वह पापपरायणा नारी नरकमें निवास करती है। वह भयंकर नरकसे निकलनेके पश्चात् बारह जन्मोंतक शूकरीकी योनिमें जन्म लेती है। तत्पश्चात् चाण्डाली होती है। सुन्दरि! इस प्रकार पापका परिणाम जानकर मैंने तुम्हें सखी-भावसे मना किया है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह शत्रुको भी अच्छी बुद्धि, उचित परामर्श दे।'

'सुन्दरि! जिस पत्नीके पति उसके व्यवहारसे दुःखी होते हैं, वह समृद्धिशालिनी हो तो भी उस पापिनीकी अधोगति ही कही गयी है। वह सत्तर युगोंतक 'पूय' नामक नरकमें पड़ी रहती है। तत्पश्चात् सात जन्मोंतक छछूँदर होती है। तदनन्तर काकयोनिमें जन्म लेती है, फिर क्रमशः शृगाली, गोधा और गाय होकर शुद्ध होती है। स्त्रियोंके लिये एकमात्र पतिके सिवा संसारमें दूसरा कौन देवता है?'

इतनी अच्छी बातें सुननेपर भी मोहिनीकी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई। उसकी भावी उसके सिरपर नाच रही थी। जगत्को अच्छी शिक्षा मिलनेवाली थी। मोहिनीकी दुर्दशा होनी ही थी। रानी संध्यावलीकी बातें सुनकर दुष्टहृदया मोहिनीने अपनी एक नयी शर्त रखी—'राजा रुक्मांगद अपने हाथोंसे अपने पुत्र धर्मांगदका सिर काटकर भेंट करें अथवा एकादशीके दिन अन्न ग्रहण करें तभी उनके सत्यकी रक्षा हो सकती है।'

परम गुणवान् आज्ञाकारी पुत्र धर्मांगदने अपने पिताके

सत्यकी रक्षाके लिये अपना सिर देना सहर्ष स्वीकार कर लिया। पतिपरायणा रानी संध्यावलीने अपने हृदयको कठोर करके अपने पतिके सत्यकी रक्षाके लिये अपने लाड़ले होनहार पुत्रका बलिदान होना स्वीकार किया।

राजा रुक्मांगद मोहिनीकी नयी शर्त सुनकर अर्धमूर्च्छित-से होने लगे। मूर्ख मोहिनीको अपनी भावी दुर्दशाका किंचिन्मात्र भी विचार नहीं था। वह अपने पतिके बहुत समझाने एवं अनुनय-विनय करनेपर भी कुछ ध्यान न देकर अपने हठपर अड़ी रही। अन्तमें धर्मांगद एवं रानी संध्यावलीने महाराज रुक्मांगदसे प्रार्थना करके उन्हें सत्यकी रक्षाके लिये राजी किया। सत्यकी महिमा विलक्षण है। राजा रुक्मांगद हाथमें तलवार लेकर धर्मांगदका सिर काटनेके लिये उद्यत हुए। धर्मांगदने भक्तिपूर्वक माता-पिताके चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम किया और भगवान् विष्णुके ध्यानमें मग्न हो तलवारकी धारके सामने अपना सिर धरणीपर रख दिया।

कृपालु भगवान् विष्णु राजा रुक्मांगद, रानी संध्यावली एवं धर्मांगदका धैर्य देख रहे थे। चमचमाती तलवार ज्यों ही धर्मांगदके सिरको छूनेवाली ही थी, त्यों ही भगवान् श्रीहरिने प्रकट होकर राजाका हाथ पकड़ लिया। उस अद्‌भुत दृश्यको देवगण भी देख रहे थे। उनके देखते-देखते ही महात्मा नरेश अपनी रानी संध्यावली एवं पुत्र धर्मांगदके साथ भगवान् विष्णुमें सशरीर विलीन हो गये।

क्रूर-हृदया मोहिनी भी यह दृश्य देख रही थी। राजाके पुरोहित वसुसे यह सब देखा नहीं गया। उनके संकल्पसे दुष्टा मोहिनी वहीं भस्म होकर राखकी ढेर हो गयी।

(नारदपुराण)

~~O~~

# सत्संग एवं भगवान्‌के चरणोदककी महिमा

प्राचीन कालमें गुलिक नामक एक व्याध था। वह बड़ा क्रूर था। वह पराये धनको हड़पनेमें सदा तत्पर रहता था। धनके लिये प्राणियोंकी, मनुष्योंकी हत्या करनेमें भी उसके मनमें हिचक न थी। वह सदा इसी अवसरकी प्रतीक्षामें रहता था कि परायी स्त्रियोंका अपहरण कर लूँ, कपटपूर्वक धन हरण कर लूँ, पशु-प्राणियोंकी हत्या कर दूँ। धनके लिये ब्राह्मणोंको मारनेमें भी वह नहीं चूकता था। देवसम्पत्तिको हड़पनेमें भी उसे सुखका अनुभव होता था। किसी भी प्रकारके पाप-कर्म करनेमें उसे ग्लानि नहीं होती थी। इसी पापपूर्ण धनसे वह अपने परिवारका पालन-पोषण करता था।

एक दिन गुलिक व्याध धनकी खोजमें अपने आवास-स्थानसे बहुत दूर निकल गया। मार्गमें एक उपवनमें उसने एक भव्य विष्णु-मन्दिर देखा। वह मन्दिर कई स्वर्ण-कलशोंसे सुसज्जित था। भारी-भारी स्वर्ण-कलशोंको देखकर गुलिकका पापपूर्ण मन नाच उठा। वह उन्हें लूटनेकी योजना मनमें बनाने लगा। इसी उद्देश्यसे उसने मन्दिरमें प्रवेश किया। वहाँ उसे एक ब्राह्मण देवताके दर्शन हुए। तपस्याके तेजसे ब्राह्मणका मुखमण्डल प्रकाशयुक्त था, उसपर ज्ञान एवं प्रकाशकी आभा छिटक रही थी। भगवान् विष्णुकी सेवा ही उनके जीवनकी निधि थी। वे सदा सेवामें तत्पर थे। उनका हृदय दयासे भरा था। सेवा-कार्यसे निवृत्त होनेपर वे भगवान्‌के ध्यानमें तल्लीन रहते थे। उनका नाम उत्तंक था।

गुलिकने चोरीके दृढ़ निश्चयसे ही मन्दिरमें प्रवेश किया

था। उसने सोचा कि ये उत्तंक ऋषि ही मेरे मार्गके बाधक हैं, अतः उन्हें मारनेके लिये उसने तत्काल अपनी तलवार निकाल ली और उनपर आक्रमण कर दिया। उसने उनकी जटा पकड़कर धरतीपर पटक दिया। उनकी छातीपर पैर रखकर वह उन्हें मारना चाहता था कि मुनिकी विनम्र निष्कपट वाणी उसके कानोंमें पड़ी—

'मनुष्य जबतक धन कमाता है, तभीतक भाई-बन्धु उससे सम्बन्ध रखते हैं, परंतु इहलोक और परलोकमें केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते हैं। वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है।'

मुनिकी विनम्र गूढ़ वाणी सुनकर गुलिक ठिठक गया, उसके हाथ रुक गये। सत्संगकी बड़ी महिमा है। भगवान्‌की महती कृपासे ही संतोंके दर्शन एवं उनका सत्संग प्राप्त होता है। दुष्टजनोंको सुधारनेका सत्संग ही महारसायन है। दुष्ट सत्संग पाकर सुधर जाते हैं। पारस लोहेको स्वर्ण बना देता है और सत्संग दुष्टको निर्मल कर देता है।

मुनि उत्तंकने निर्भयतापूर्वक गुलिकसे कहा—'भैया! मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है? मैं तो सर्वथा निरपराध हूँ और भगवान् विष्णुकी शरण हूँ। भगवान् तो सबके हितकारी हैं और सदा ही अत्यन्त प्रिय हैं। फिर क्यों न तुम सर्वभयहारी प्रभुकी शरणमें जाते हो? वे दीनवत्सल सदाके लिये तुम्हें अभय कर देंगे।'

'भैया गुलिक! शक्तिशाली पुरुष तो अपराधियोंको, पापियोंको भी नहीं मारते, फिर तुम मुझे व्यर्थ क्यों मार रहे हो? सज्जन पुरुष तो सताये जानेपर भी सतानेवालेको मारते नहीं, क्षमा कर देते हैं। जिनकी बुद्धि सदा दूसरोंके हितमें लगी रहती है, वे पुरुष

कभी किसीसे भी द्वेष नहीं करते—ऐसे पुरुष भगवान्‌को बड़े प्रिय होते हैं।'

'व्याध! तुम दूसरोंका धन लूटकर अपने परिवारका पालन-पोषण करते हो, परंतु मृत्युके समय तुम्हें माता-पिता, तुम्हारी पुत्र-पुत्रियाँ, तुम्हारी ममताकी समस्त वस्तुएँ यहीं—इस पृथ्वीपर ही रह जायँगी। तुम्हारे साथ केवल तुम्हारे पाप-कर्म जायँगे। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् दैवके अधीन है, अतः दैव ही जन्म और मृत्युको जानता है, दूसरा नहीं। ममतासे व्याकुल चित्तवाले मनुष्य महान् दुःख सहते हैं। वे बड़े-बड़े पाप करके धन इकट्ठा करते हैं। उस धनको उसके बन्धु-बान्धव भोगते हैं, परंतु वह मनुष्य अपने पाप-कर्मोंके फलस्वरूप अकेला नरक-यन्त्रणा भोगता है। उस पाप-कर्ममें उसका कोई हिस्सा नहीं बँटा सकता। अतः तुम पाप-कर्म करना छोड़ दो।'

ऐसे वचन सुनते ही गुलिकने महर्षि उत्तंकको छोड़ दिया। सत्संग, भगवद्विग्रह एवं संत-दर्शनका उसकी बुद्धिपर प्रभाव पड़ा। उसका हृदय अपने कुकृत्योंका स्मरण करके जलने लगा। तब गुलिक महर्षिके चरणोंमें गिर पड़ा और अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगने लगा। उसने कहा—'विप्रवर! मैंने बड़े-बड़े भयंकर पाप किये हैं। अब मेरा उद्धार कैसे होगा? मेरी अब क्या गति होगी? मेरी आयु व्यर्थ चली गयी।'

आत्मग्लानिसे पीड़ित गुलिक व्याध अपने आन्तरिक संतापकी अग्निसे झुलसने लगा और उसने उत्तंक मुनिके चरणोंमें ही अपने प्राण त्याग दिये। मुनिका हृदय करुणासे द्रवित हो गया। उन्होंने भगवान् विष्णुके चरणोदकसे व्याधका सम्पूर्ण शरीर सींच दिया। चरणोदकके प्रभावसे एवं संतके स्पर्शसे

व्याधके समस्त पाप नष्ट हो गये। वह भगवान् विष्णुके चरणोंका अधिकारी हो गया। वह व्याध अपने दिव्य शरीरसे मुनि उत्तंकपर पुष्पकी वर्षा करते हुए और उनका गुण-कीर्तन करते हुए विष्णु-धाममें चला गया।

जो मनुष्य किसीके संगसे, स्नेहसे, भयसे, लोभसे अथवा अज्ञानसे भी भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, वह अक्षय सुखका भागी होता है। भगवान् विष्णुका चरणोदक अकालमृत्युका निवारक, समस्त रोगोंका नाशक और सम्पूर्ण दुःखोंकी शान्ति करनेवाला माना गया है।

(नारदपुराण)

# कुसंगका दुष्परिणाम

सच है, कोई पुरुष अत्यन्त धैर्यवान्, दयालु, सद्गुणी, सदाचारी, नीतिज्ञ, कर्तव्यनिष्ठ और गुरुका भक्त अथवा विद्या-विवेक-सम्पन्न भी क्यों न हो, यदि वह निरन्तर अत्यन्त पापबुद्धि दुष्ट पुरुषोंका संग करेगा तो अवश्य ही क्रमशः उन्हींकी बुद्धिसे प्रभावित होकर उन्हींके समान हो जायगा। इसलिये सदा ही दुष्ट पुरुषोंका संग त्याग देना चाहिये।

उपर्युक्त नीतियुक्त वचनका पालन न करनेसे राजा धर्मकीर्तिका भी पतन हो गया था। प्राचीन कालमें चन्द्रवंशमें धर्मकीर्ति नामक एक राजा हुए थे। वे बड़े ही बुद्धिमान् और पुण्यकर्मा थे। उनके प्रजापालनमें कोई त्रुटि नहीं थी। वैदिक मार्गका अनुसरण करना उनका सहज स्वभाव था। वे समय-समयपर यज्ञोंका आयोजन भी करते रहते थे। ऐसे गुणवान् राजाका ऐश्वर्य-सम्पन्न होना स्वाभाविक ही था। राजा धर्मकीर्तिके कोशमें धनकी कोई कमी न थी।

दुराचारी पाखण्डियोंकी दृष्टि तो सदैव धनपर ही रहती है। उन्होंने राजा धर्मकीर्तिपर भी अपना चक्र चलाया। पाखण्डी लोग बार-बार राजाको यह समझाते कि यज्ञ आदि सत्कर्म करनेसे क्या लाभ? केवल मौजसे रहो, उस कुचक्रसे बचना तो केवल उनके संगके त्यागसे ही सम्भव था, परंतु राजा धर्मकीर्ति मोहवश उन पाखण्डियोंका संग-त्याग न कर सके और उनके कुचक्रके शिकार हो गये। कुसंगके कारण राजाको धर्मपथसे च्युत होते देर न लगी। उन्होंने धीरे-धीरे यज्ञ आदि सत्कर्म बंद कर दिये। पाखण्डियोंके दुःसंगसे राजाकी पाप-कर्मोंके प्रति घृणा नष्ट हो गयी और अन्तमें वे पापकर्मोंमें रत रहने लगे। राजाकी देखादेखी

प्रजामें भी अधर्मकी वृत्ति बढ़ने लगी। राजा धर्मकीर्ति अनेक प्रकारके दुर्व्यसनोंके शिकार हो गये, जिनमें एक मृगयाका दुर्व्यसन भी था। एक दिन आखेटके समय धर्मकीर्ति अपनी सेनासे बिछुड़कर अकेले ही जंगलमें भटक गये। भटकते-भटकते वे नर्मदाके तटपर पहुँचे और नदीके निर्मल जलमें प्रवेश कर उन्होंने अपनी थकान दूर की। संध्या हो गयी थी और अँधेरा होने लगा था, अत: राजा भयसे आगे नहीं बढ़े और वहीं नर्मदाके तटपर विश्राम करने लगे। संयोगवश उस दिन एकादशी तिथि थी। नर्मदा-तटवासीजन एकादशी-व्रती थे। वे लोग वहीं नर्मदाके किनारे रात्रि-जागरणके लिये एकत्र हुए। दिनभरके निराहारी राजाके नेत्रोंमें नींद कहाँ थी। वे भी तटवासियोंके साथ रात्रि-जागरणमें सम्मिलित हो गये और रात्रिभर भजन-कीर्तनमें लगे रहे।

राजा धर्मकीर्ति भूखकी व्यथा सहन न कर सके, जिससे प्रात:काल होते-होते उनके प्राण प्रयाण कर गये। उनके प्रारब्धमें यही लिखा था। प्राणोंके प्रयाण करते ही धर्मकीर्तिको यमदूतोंने आ घेरा और वे उन्हें यमराजके पास ले गये। विधानका लेखा रखनेवाले चित्रगुप्तने बताया—'देव! यद्यपि राजा धर्मकीर्तिने बहुत-से पाप-कर्म किये हैं, परंतु अन्तिम दिन इन्होंने एकादशीके उत्तम व्रतका पालन करके रात्रिभर जागरण तथा भजन-कीर्तन करते हुए प्राणोंका त्याग किया है। अत: इनके सभी पापोंका क्षय हो गया है। पापोंके क्षयवाले व्यक्तिका यमलोकमें क्या काम? वह तो उत्तम लोकका भागी होता है।' यमराजने धर्मकीर्तिको साष्टांग प्रणाम किया और अपने दूतोंको सावधान करते हुए उन्हें आदेश दिया—

'जो भगवत्पूजामें तत्पर, धर्मपरायण, गुरुजनसेवक, वर्णाश्रमोचित आचारनिष्ठ, दीनरक्षक, एकादशी-व्रती, मृत्युकालमें भजन-कीर्तनमें

तल्लीन, भगवत्कथामृतके सेवी, सम्पूर्ण कर्मोंको भगवान्‌को अर्पण करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, सत्संगी और अतिथिसत्कारके प्रेमी हों, ऐसे व्यक्ति सदैव उत्तम लोकके अधिकारी होते हैं, अतः इन्हें स्वर्गलोक भेज देना चाहिये।' इस निर्णयके अनुसार राजा धर्मकीर्ति स्वर्गलोकको भेज दिये गये। वहाँ बहुत कालतक स्वर्गके भोग भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर उन्होंने पुनः इस पृथ्वीपर सत्यपरायण, धर्मात्मा मुनि गालवके यहाँ जन्म लिया। उनका नाम हुआ भद्रशील।

बालक भद्रशीलमें बड़े अद्‌भुत गुण थे। भगवान् विष्णुका ध्यान-भजन-चिन्तन यही उस बालकका स्वभाव था। बालकपनमें ही उसने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। खेल-ही-खेलमें वह मिट्टीसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उनका पूजन किया करता था। भद्रशीलने अपने साथी बालकोंको भी भगवान् विष्णुका पूजन-आराधन करना सिखा दिया था। साथी बालक भी खेलमें भगवान् विष्णुकी प्रतिमाएँ बनाया करते और उनका पूजन करते। भद्रशील स्वयं एकादशी- व्रतका पालन करता था, अतः उसकी देखादेखी उसके साथी बालक भी एकादशी-व्रत-पालन करना सीख गये थे।

भद्रशील शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंसे सदैव दूर रहता था। उसकी किसीमें ममता-आसक्ति थी नहीं, अतः वह सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित था। भद्रशील अपने आचरणसे कभी किसीको भी दुःख नहीं देता था। वह सर्वदा दूसरोंके हित-सम्पादनका ही ध्यान रखता था। उसमें विलक्षण गुण थे। उसकी प्रार्थना ही ऐसी होती थी—'प्रभो! आप विश्वके सभी प्राणियोंका कल्याण करें।' जैसा भद्रशीलका नाम था, वैसे ही उसमें गुण भी थे और उसकी भगवद्‌भजन-ध्यानकी तत्परता प्रेरणाप्रद थी।

भद्रशीलके शैशवकालके मंगलमय चरित्रने सभीको विस्मयमें डाल रखा था। यहाँतक कि उसके पिता मुनि गालव भी अपने बालकके चरित्रसे विस्मित थे। ऐसा पावन चरित्र महापुरुषोंकी सेवासे तो सुलभ हो सकता है, परंतु मुनि गालवने कभी भी भद्रशीलको महापुरुषकी सेवा करते नहीं देखा था। मुनि गालव अपनी इस पहेलीको सुलझा नहीं सके और अन्तमें उन्होंने बालकसे ही बड़े प्यारसे पूछा—'वत्स! तुम्हें यह योगि-दुर्लभ बुद्धि कहाँसे और कैसे प्राप्त हुई?'

बालक भद्रशील अपने आदरणीय पितासे यह रहस्य छिपा नहीं सके। वे जातिस्मर तो थे ही। उन्होंने अपने पूर्वजन्मके राजा धर्मकीर्ति होनेका पूरा विवरण अपने पिताजीसे कह सुनाया कि किस तरह वे दुःसंगमें पड़कर भ्रष्ट हुए और पुनः एकादशी-व्रत एवं मृत्युके समय भजन-कीर्तन करनेसे पापोंसे मुक्त होकर इस योनिको प्राप्त हुए।

बालक भद्रशीलने अपने पितासे शास्त्रोचित पूजनके विधि-विधानका अध्ययन किया। मुनि गालव ऐसे योग्य बालकको पाकर अपने जीवनको सार्थक मानते थे। भगवद्भक्त भद्रशीलने अपने सम्पूर्ण कुलको पवित्र कर दिया—

**सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।**
**श्रीरघुबीर परायन जेहि नर उपज बिनीत॥**

(नारदपुराण)

# पुण्यसलिला भगवती गंगा

भगवती भागीरथी गंगाका इस पृथ्वीपर प्रादुर्भाव पापियोंकी सद्गति एवं पृथ्वीको पवित्र करनेके लिये हुआ है।

सूर्यवंशके राजा सगर बड़े बलवान्, धर्मात्मा, कृतज्ञ, गुणवान् तथा परम बुद्धिमान् थे। वे बड़े विनयी एवं सद्गुणोंके भण्डार थे। उन्होंने अपने बलसे अपने पिताके शत्रु सभी राजाओंको परास्त कर सम्पूर्ण पृथ्वीपर अपना राज्य स्थापित किया। दुर्भाग्यवश राजा सगरके साठ हजार एक पुत्र थे। वे सभी बुरे आचरणवाले एवं दुष्ट प्रकृतिके थे तथा अपने-अपने शारीरिक सुख-सुविधा और ऐश-आराममें संलग्न रहते थे। वे धार्मिक अनुष्ठान करनेवाले लोगोंके कार्योंमें सदा विघ्न डाला करते थे। उन्होंने साधु पुरुषोंकी जीविका छीन ली और सदाचारका नाश कर डाला। पृथ्वीके लोग ही नहीं, देवता भी उनके दुराचारोंसे त्रस्त हो गये थे। एक बार धर्मात्मा राजा सगरने महर्षियोंके सहयोगसे अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। सगरपुत्रोंसे त्रस्त देवताओंको उनके पुत्रोंके विनाशका उपाय हाथ लग गया। इन्द्रने अश्वमेध-यज्ञमें नियुक्त घोड़ेको चुराकर पातालमें तपस्यामें संलग्न महान् वीतराग महात्मा कपिलजीकी कुटियाके पास बाँध दिया। घोड़ेकी खोजमें सगरके पुत्रोंने समस्त पृथ्वी छान डाली, परंतु उन्हें कहीं भी यज्ञका घोड़ा न मिला। अन्तमें उन पुत्रोंने पातालमें जानेके लिये पृथ्वी खोदनी आरम्भ की और वे पातालमें पहुँच गये। पातालमें खोजते-खोजते वे लोग भगवान् कपिलदेवकी गुफापर पहुँचे। वहाँ उन्हें करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावशाली महात्मा कपिलजीका दर्शन हुआ। वे ध्यानमें निमग्न थे। वहाँ एक परम सात्त्विक प्रकाशकी छटा थी।

वे सभी वहाँ घोड़ा बँधा देखकर क्रोधमें भर गये।

सगरपुत्र परस्पर चिल्लाने लगे—'इसे पकड़ लो, इसे पकड़ लो, इसे मार डालो। इसीने घोड़ा चुराया है। यह साधु नहीं है, बगुला भगत है।' महात्मा कपिलजी पूर्ववत् ध्यानस्थ थे। उन लोगोंके चिल्लानेका उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं था। उनकी वृत्ति पूर्णरूपसे ब्रह्मके ध्यानमें लीन थी। उन्हें बाह्य जगत्का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था। जब उन्होंने नेत्र नहीं खोले, तब सगरपुत्र उनकी बाहें पकड़कर उन्हें लातोंसे मारने लगे। बहुत देर बाद कपिल मुनिको बाह्यज्ञान हुआ। वे विस्मित-से सगरपुत्रोंको देखने लगे।

साधु पुरुषोंका केवल अपमान अथवा उन्हें कटु वचन बोलना ही पूरे वंशके विनाशका कारण हो सकता है, वह अनेक दुःखोंका सृजन करनेवाला होता है। भगवान् संतोंका अपमान सहन नहीं कर सकते। संत, सती सदैव पृथ्वीका मंगल करते आये हैं।

सगरपुत्रोंके पापोंकी—दुष्कर्मोंकी इति हो गयी थी। जहाँ धन होता है, जवानी होती है और साथमें अविवेकता होती है, वहाँ पतन अवश्यम्भावी है। सगरपुत्रोंमें अविवेकता भरी थी, उन्होंने बिना कारण ही, बिना विचार किये ही महात्मा कपिलदेवको सताया था। देखते-ही-देखते भगवान् कपिलके नेत्रोंसे आग प्रकट हो गयी, जिससे सभी सगरपुत्र तत्काल भस्म हो गये। साधु-संतोंका कोप दुःसह होता है।

देवदूतोंद्वारा महाराज सगरको अपने पुत्रोंके घृणित व्यवहारका समाचार विदित हुआ। अपने पुत्रोंके विनाशसे राजा सगरको दुःख नहीं हुआ; क्योंकि उनके दुश्चरित्रको वे भलीभाँति जानते थे। सगरने अपने पौत्र अंशुमान्को महात्मा कपिलदेवके पास उनका कोप शान्त करनेके लिये भेजा। अंशुमान् बुद्धिमान्, विद्वान्

एवं भक्त पुरुष थे। वे पातालमें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुनिवर कपिलकी गुफापर पहुँचे। अंशुमान्‌ने कपिलदेवजीको साष्टांग प्रणाम किया। वे विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! मेरे पिताके भाइयोंने आपके साथ दुष्टता की है, उन्हें क्षमा करें। वे अज्ञानी थे, आपकी महिमाका उन्हें ज्ञान नहीं था। आपका स्वभाव तो चन्दनकी तरह है। मेरे इन पितरोंका आप उद्धार करें। आप सदैव ही क्षमावान् हैं।'

अंशुमान्‌की प्रार्थनासे कपिलमुनि प्रसन्न हो गये। उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हारा पौत्र भगवान्‌की आराधनासे उन्हें प्रसन्न कर और पुण्यसलिला गंगाको यहाँ लाकर सभी सगरपुत्रोंको निष्पाप बना देगा। उन सबको परम पदकी प्राप्ति होगी।' अंशुमान् कपिलदेवसे आशीर्वाद प्राप्त कर और उनसे घोड़ा लेकर अपने पितामहके पास लौट आये। सगरने यज्ञको पूर्ण किया और भगवान् विष्णुकी आराधना करके वैकुण्ठकी प्राप्ति की।

अंशुमान्‌के दिलीप नामका पुत्र हुआ। भगीरथ इन राजा दिलीपके ही पुत्र थे। अपने पितरोंके उद्धारहेतु भगीरथने दीर्घकालतक हिमालयपर कठोर तपस्या करके भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा भगवान् शंकरकी आराधना की। उनके तपसे वे तीनों देव प्रसन्न हो गये। उन्हें प्रसन्न कर भगीरथ देवनदी गंगाको इस पृथ्वीपर ले आये। जगत्‌को एकमात्र पावन करनेवाली गंगा समस्त जगत्‌को पवित्र करती हुई राजा भगीरथके पीछे-पीछे आकर सगर-पुत्रोंके भस्मको प्लावित करती हुई बहने लगीं। उनके भस्मका गंगासे स्पर्श प्राप्त हुआ और वे सभी विष्णुधाममें चले गये।

(नारदपुराण)

# श्रीदुर्गासप्तशतीकी संक्षिप्त कथा

## प्रथम चरित्र

दूसरे मनुके राज्याधिकारमें 'सुरथ' नामक चैत्रवंशोद्भव राजा क्षितिमण्डलका अधिपति हुआ। शत्रुओं तथा दुष्ट मन्त्रियोंके कारण उसका राज्य, कोषादि उसके हाथसे निकल गया। फिर वह मेधा नामक ऋषिके आश्रममें पहुँचा और वहाँ भी मोहवश प्रजा, पुर, धन, कोष और दासोंकी अर्थात् नाशवान् पदार्थोंकी चिन्तामें लगकर दुःखी हुआ। केवल आत्मज्ञ पुरुष ही पूर्ण सुखी होता है। सुरथकी वही दशा हुई जो भगवद्भक्तिविहीन पुरुषोंकी होती है। इसी आश्रममें 'समाधि' नामक वैश्यसे राजा सुरथकी भेंट हुई। यद्यपि यह वैश्य अपने धन-लोलुप स्त्री-पुत्रोंद्वारा घरसे बहिष्कृत कर दिया गया था, तब भी वह उनके दुर्व्यवहारको विस्मृत कर उनके वियोगमें दुःखी था। इस प्रकार ये दोनों 'मेधा' ऋषिके समीप पहुँचे। वहाँ दोनों मुनिको प्रणाम करके बैठ गये। राजाने ऋषिसे कहा—भगवन्! जिस विषयमें हम दोनोंको दोष दीखता है, उसकी ओर भी ममतावश हमारा मन जाता है। मुनिवर! यह क्या बात है कि ज्ञानी (बुद्धिमान्) पुरुषोंको भी मोह होता है?

महर्षि मेधा उन्हें मोहका कारण बतलाते हुए कहने लगे—'इसमें कुछ आश्चर्य नहीं करना चाहिये कि ज्ञानियोंको भी मोह होता है; क्योंकि महामाया भगवती अर्थात् भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा (तमोगुणप्रधान शक्ति) ज्ञानी (बुद्धिमान्) पुरुषोंके चित्तको भी बलपूर्वक खींचकर मोहयुक्त कर देती हैं, वे ही भक्तोंको वर प्रदान करती हैं और वे ही 'परमा' अर्थात् ब्रह्मज्ञानरूपा हैं।

राजाने भगवतीकी ऐसी महिमा सुनकर ऋषिसे तीन प्रश्न किये—

(१) वे महामाया देवी कौन हैं? (२) वे कैसे उत्पन्न हुईं? और (३) उनका कर्म तथा प्रभाव क्या है?

मुनिने उत्तर दिया—वे जगन्मूर्ति नित्या हैं और उन्हींसे यह सब व्याप्त है। तब भी उनकी उत्पत्ति देवताओंकी कार्यसिद्धिके अर्थ कही जाती है।

जब प्रलयके पश्चात् भगवान् विष्णु शेषशय्यापर योगनिन्द्रामें निमग्न हुए, तब उनके कर्ण-मलसे मधु और कैटभ नामक दो असुर उत्पन्न होकर भगवान्‌के नाभिकमलपर स्थित ब्रह्माजीको ग्रसने चले। इस स्थितिको देखकर ब्रह्माजी भगवान्‌की योगनिद्राकी स्तुति परम प्रेमपूर्वक करने लगे और उसमें उन्होंने ये तीन प्रार्थनाएँ कीं—(१) भगवान् विष्णुको जगा दीजिये, (२) उन्हें असुरद्वयके संहारार्थ उद्यत कीजिये और (३) असुरोंको विमोहित करके भगवान्-द्वारा उनका नाश करवाइये। श्रीभगवतीने स्तुतिसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीको दर्शन दिया। भगवान् योगनिद्रासे मुक्त होकर उठे और असुरोंसे युद्ध करने लगे। तदुपरान्त असुरयुगल योगनिद्राके द्वारा मोहित हुए और उन्होंने भगवान्‌से वरदान माँगनेको कहा। अन्तमें उसी वरदानके अनुसार वे भगवान्‌के हाथों मारे गये।

इस कथासे तीन बातोंका निष्कर्ष निकलता है—

(१) ब्रह्माको परमाशक्तिका ज्ञान। (२) प्रकृतिके गुणत्रयका कार्य, उसके कर्तृत्वका भान और (ब्रह्माका) अपने सृष्टिकर्तृत्वमें निरहंकारत्व तथा (३) मधु-कैटभ अर्थात् सुकृत-दुष्कृतमें निर्ममत्व एवं उसके निर्मूलनका प्रयत्न।

इस कथासे श्रीब्रह्माजीने यह उपदेश दिया कि 'जो भगवतीकी

आराधना करते हैं एवं कर्तृत्वके अभिमान तथा सुकृत-दुष्कृतरूपी कर्मफलको त्यागकर अपने विहित कर्ममें प्रवृत्त रहते हैं, उनका जीवन शान्तिपूर्वक निर्विघ्नरूपसे व्यतीत होता है।' यही ब्राह्मी स्थिति है, जिसे पाकर मनुष्य मोहग्रस्त नहीं होता। महर्षि मेधा सुरथ तथा समाधि दोनों जिज्ञासुओंके मोहके निराकरणार्थ कर्मके उच्चतम सिद्धान्तका निरूपण करके उपासना तथा ज्ञानयोगके तत्त्वको भगवतीके अन्यान्य प्रभावोंद्वारा वर्णन करने लगे।

## मध्यम चरित्र

इस कथामें ऋषिने सुरथ तथा समाधिके प्रति मोहजनित सकामोपासनाद्वारा अर्जित फलोपभोगके निराकरणके लिये निष्कामोपासनाका उपदेश किया है।

प्राचीन कालमें महिष नामक एक अति बलवान् असुरने जन्म लिया। वह अपनी शक्तिसे इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, वायु तथा अन्य सुरोंको हराकर स्वयं इन्द्र बन गया और उसने समस्त देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया। अपने स्वर्ग-सुख—भोगैश्वर्यसे वंचित होकर दुःखी देवगण साधारण मनुष्योंकी भाँति मर्त्यलोकमें भटकने लगे। अन्तमें व्याकुल होकर वे लोग ब्रह्माजीके साथ भगवान् विष्णु और शिवजीके निकट गये तथा उनके शरणागत होकर उन्होंने अपनी कष्ट-कथा कह सुनायी।

देव-वर्गकी करुण-कहानी सुन लेनेपर हरि-हरके मुखसे महत्तेज प्रकट हुआ। इसके पश्चात् ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यमादि देवताओंके शरीरसे भी तेज निकला। वह सब एक होकर तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाली एक दिव्य देवीके रूपमें परिणत हो गया। तब विधि-हरि-हर—त्रिदेवों तथा अन्य प्रमुख सुरोंने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रोंमेंसे दिव्य प्रकाशमयी उन तेजोमूर्तिको

अमोघ अस्त्र-शस्त्र दिये। तब श्रीभगवती अट्टहास करने लगीं। उनके उस शब्दसे समस्त लोक कम्पायमान हो गये।

तब असुरराज महिष 'आ!' यह क्या है? ऐसा कहता हुआ सम्पूर्ण असुरोंको साथ लेकर उस शब्दकी ओर दौड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने उन महाशक्ति देवीको देखा, जिनकी कान्ति त्रैलोक्यमें फैली है और जो अपनी सहस्र भुजाओंसे दिशाओंके चारों ओर फैलकर स्थित हैं। इसके बाद असुर देवीसे युद्ध करने लगे। श्रीभगवती और उनके वाहन सिंहने कई कोटि असुर-सैन्यका विनाश किया। तत्पश्चात् श्रीभगवतीके द्वारा चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, वाष्कल, ताम्र, अन्धक, असिलोमा, उग्रास्य, उग्रवीर्य, महाहनु, बिडाल, महासुर दुर्धर और दुर्मुख—ये चौदह असुर-सेनानी मारे गये। अन्तमें महिषासुर महिष, हस्ती, मनुष्यादिके रूप धारण करके श्रीभगवतीसे युद्ध करने लगा और मारा गया।

अपने समग्र शत्रुओंके मारे जानेपर देवताओंने आह्लादित होकर आद्या-शक्तिकी स्तुति की और वर माँगा—'जब-जब हमलोग विपद्ग्रस्त हों, तब-तब आप हमें आपदाओंसे विमुक्त करें और जो मनुष्य आपके इस पवित्र चरित्रको प्रेमपूर्वक पढ़ें या सुनें वे सम्पूर्ण सुख और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हों।'

श्रीभगवती देवताओंको वरदान देकर अन्तर्धान हो गयीं। इस चरित्रमें मेधा ऋषिने इन्द्रादि देवगणके राज्याधिकारका अपहरण, आत्मशक्ति-द्वारा उनके दुःखोंका निराकरण तथा पुनः स्वराज्य-प्राप्तिका वर्णन करके सुरथ राजाके शोक-मोहके निवारणके लिये उन्हीं आत्मशक्तिकी भक्तिका उपदेश किया है।

देवताओंकी प्रार्थनापर भगवतीने उन्हें वर दिया कि जब-जब विपद्ग्रस्त होकर वे उनका स्मरण करेंगे, तब-तब वे उनका

संकट दूर करेंगी।

## उत्तर चरित्र

मध्यम चरित्रमें मोहका कारण कर्मफलासक्त देवोंद्वारा दिखाया जाकर उत्तर चरित्रमें परानिष्ठा-ज्ञानके बाधक आत्ममोहन-अहंकारादिके निराकरणका वर्णन किया गया है।

पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ दो महापराक्रमी असुर हुए। उन्होंने इन्द्रके त्रैलोक्यका राज्य और यज्ञोंका भाग छीन लिया। वे दोनों ही सूर्य, चन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, पवन और अग्निके अधिकारोंके अधिपति बन बैठे तथा उन्होंने सुरसमाजको स्वर्गसे निकाल दिया। तब शोकग्रस्त होकर देवता मर्त्यलोकमें आये। बारम्बार दुःसह दुःखसे दयनीय दशाग्रस्त देवताओंको दानवोंके नितान्त दमनका कार्य अनिवार्य प्रतीत हुआ और वे हिमालयपर जाकर दयार्द्रहृदया श्रीदुर्गादेवीकी वन्दना करने लगे। श्रीभगवती पार्वती अपने वचनानुसार हिमालय-पर्वतपर गंगाजीके किनारे प्रकट हुईं और उन्होंने सुरोंसे पूछा—'तुम किसकी स्तुति कर रहे हो?' उनके इतना कहते ही उनके शरीरसे शिवा निकलकर कहने लगीं—ये शुम्भ-निशुम्भसे परास्त और दुःखी होकर मेरी स्तुति कर रहे हैं।'

पार्वतीके शरीरसे अम्बिका उत्पन्न हुईं, एतदर्थ ये कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हैं और भगवती पार्वतीके शरीरसे शिवाके निकल जानेपर उनका वर्ण कृष्ण हो गया, अतएव ये कालिकाके नामसे विख्यात होकर हिमालयपर रहने लगीं। तत्पश्चात् परम सुन्दरी अम्बिकाको शुम्भ-निशुम्भके भृत्य चण्ड-मुण्डने देखा और उन दोनोंने शुम्भसे जाकर उनके अतुल सौन्दर्यकी प्रशंसा की। उसने अपने भृत्योंकी बात सुनकर सुग्रीव नामक असुरको अम्बिकाको ले आनेके लिये भेजा।

सुग्रीवने भगवतीके पास पहुँचकर शुम्भ-निशुम्भके बलैश्वर्यकी बड़ी प्रशंसा की और उनसे विवाह करनेकी बात कही। भगवतीने उत्तर दिया—'जो मुझे संग्राममें पराभूत करके मेरे बल-दर्पको नष्ट करेगा, उसीको मैं पतिरूपमें स्वीकार करूँगी—यही मेरी अटल प्रतिज्ञा है।'

सुग्रीवने शुम्भ-निशुम्भके निकट जाकर भगवती आम्बिकाकी प्रतिज्ञा विस्तारपूर्वक कह सुनायी। असुरेन्द्रने कुपित होकर धूम्रलोचन नामक असुरको भेजा। भगवतीने धूम्रलोचनको हुंकारमात्रसे ही भस्म कर दिया और उन्होंने तथा उनके वाहन सिंहने असुर-सेनाका विनाश किया। तदुपरान्त असुरराज शुम्भने चण्ड-मुण्ड दोनोंको बहुत बड़ी सेनाके साथ भगवती कौशिकीको पकड़ लाने अथवा मार डालनेके लिये भेजा। वे सब हिमालयपर जाकर भगवतीको पकड़नेका प्रयत्न करने लगे। तब अम्बिकाने शत्रुओंपर अत्यन्त कोप किया और उनके ललाटसे एक भयानक कालीदेवी प्रकट हुईं। उन्होंने असुर-सेनाका विनाश किया और चण्ड-मुण्डका सिर काटकर वे अम्बिकाके पास ले गयीं, इसी कारण उनका नाम चामुण्डा पड़ा।

चण्ड-मुण्डके वधका समाचार सुनकर उस असुरने एक बड़ी सेना, जिसमें सात सेनानायकोंका विभाग था, भगवतीसे युद्ध करनेके लिये भेजी। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, महावराह, नृसिंह और स्वामिकार्तिकेय—इन सात प्रमुख देवोंकी शक्तियाँ असुर-सेनासे युद्ध करनेके लिये आयीं। फिर अम्बिकाके शरीरसे अत्यन्त भयंकर शक्ति निकली और भगवतीने शुम्भ-निशुम्भके पास शिवजीको दूतरूपमें भेजकर उनसे कहलाया—'यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो देवताओंको उनके छीने

हुए लोक एवं यज्ञाधिकार लौटा दो और पातालमें जाकर रहो।'

बलसे उन्मत्त शुम्भ-निशुम्भने देवीकी बात नहीं मानी और वे युद्धस्थलमें सेनासहित उपस्थित हुए। भगवतीने देवशक्तियोंकी सहायतासे असुरसैन्यका संहार करना प्रारम्भ किया, तब असुर-युगलका रक्तबीज नामक एक सेनाध्यक्ष भगवती और देवशक्तियोंसे युद्ध करने लगा। उसके शरीरसे शोणितके जितने बिन्दु पृथ्वीपर गिरते थे, उतने ही रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे। अन्तमें देवीने चामुण्डाको आज्ञा दी कि वह अपने मुखका विस्तार करके रक्तबीजके शरीरके रक्तको अपने मुखमें ले और उससे उत्पन्न असुरोंको भक्षण करे। चामुण्डाने ऐसा ही किया और भगवतीने उस असुरका सिर काट डाला। तत्पश्चात् निशुम्भ भगवतीसे युद्ध करने लगा और मारा गया। तब शुम्भने क्रोधित होकर अम्बिकासे कहा—'तू दूसरोंके बलका सहारा लेकर अभिमान करती है?'

श्रीभगवतीने उत्तर दिया—'संसारमें मैं एक ही हूँ, ये समस्त विभूतियाँ मेरी रूपान्तरमात्र हैं। ये मुझसे ही प्रकट हुई हैं और मुझमें ही विलुप्त हो जायँगी।' इसके बाद सातों शक्तियाँ, जो देवीके शरीरसे निकली थीं, उन्हींमें प्रविष्ट हो गयीं और शुम्भ भी देवीके युद्ध-कौशलसे मारा गया। देवगणोंने हर्षित होकर अम्बिकाकी स्तुति की। अन्तमें देवी प्रसन्न होकर बोलीं—'संसारका उपकार करनेवाला वर माँगो।'

देवताओंने कहा—'जब-जब हमारे शत्रु उत्पन्न हों, तब-तब उनका नाश हो।' भगवती आद्याशक्तिने 'एवमस्तु' कहा और भविष्यमें सात बार भक्त-रक्षणार्थ अवतार लेनेकी कथा, दुर्गाचरित्रके पाठका माहात्म्य-वर्णन करके वे अन्तर्धान हो गयीं।

यह चरित्र ज्ञानकाण्डका है और उसमें तीन विषय हैं—

(१) देवताओंका सात्त्विक ज्ञानसे स्तुति करना, (२) ज्ञानके विरोधी अहंकारादिका नाश और (३) भगवतीका अद्वैतभाव।

१-देवताओंको भगवतीकी उपासनाका ज्ञान था। इसी हेतु उन्हें अब श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तत्त्वज्ञ ईश्वरकोटिके देवताओंके निकट जानेकी आवश्यकता न थी और वे जगज्जननी भगवतीकी स्तुति करनेके लिये प्रवृत्त हुए। सात्त्विक ज्ञानका लक्षण श्रीमद्भगवद्गीतामें इस प्रकार कहा है—

'जिस ज्ञानद्वारा मनुष्य समस्त पृथक्-पृथक्' भूतोंमें एक ही अभिन्न अविनाशी परमात्माके दर्शन करता है, वह सात्त्विक ज्ञान है। अतएव देवगण '**या देवी सर्वभूतेषु**' इत्यादि स्तुतिसे सब भूतोंमें उन्हीं आद्याशक्तिका एक अव्यय, अविनाशी भाव जानकर तेईस मातृगणोंद्वारा उनकी वन्दना करने लगे।

२-परमार्थ पथतत्पर प्रपन्न पुरन्दरादि देवोंने शुम्भ-निशुम्भादि विपक्षियोंके क्षयकी आकाङ्क्षा प्रकट करते हुए पुनीत प्रार्थनाएँ करके भगवती पार्वतीका प्रत्यक्ष दर्शन किया और श्रीभगवतीने शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड तथा सुग्रीव—इन प्रमुख सात असुरोंको पराजित करके देवताओंकी रक्षा की।

३-श्रीजगदिम्बकाने शुम्भके प्रति कहा है—'मैं इस संसारमें एक ही हूँ और मुझसे अतिरिक्त दूसरा कौन है? मैं अपनी विभूतिद्वारा बहुत-से रूपोंसे यहाँ स्थित थी, अब उन सबको अपनेमें लय करके पुनः अकेली ही स्थित हूँ।'

## उपसंहार

भगवती चण्डिका अपनी स्तुतिका माहात्म्य और उसका फल तथा पूजा-विधि कहकर अन्तर्धान हो गयीं और मेधा ऋषिने उन्हीं महाशक्तिको धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-फलप्रदा कहकर

यह उपदेश किया—'महाराज! आप उन्हीं परमेश्वरीकी शरणमें जाइये। वे अपनी आराधनासे प्रसन्न होकर मनुष्योंको भोग,स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती हैं।'

राजा और वैश्य श्रीभगवतीके चरित्र तथा महर्षि मेधाके उपदेशको सुनकर उन महादेवी भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये नदी-तटपर तपश्चर्या एवं उपासना करने लगे। जगद्धात्री चण्डिकाने प्रसन्न होकर उन दोनोंको दर्शन दिया और कहा—'मैं तुम दोनोंसे प्रसन्न हूँ, तुम जो कुछ माँगोगे वही मैं तुम्हें दूँगी।' आद्या देवीकी बात सुन राजाने यह विचार किया—'मेरे लिये अपना क्षात्रकर्म करना ही उचित है। अपने आश्रितजनोंको कष्टमें छोड़कर अकेले वनमें चले जाना क्षात्र-धर्मके विरुद्ध है। यदि मैं ब्रह्माजीके समान अपने कर्तृत्वके अहंकारको भुलाकर उन्हीं महामायाकी आराधना करता तो वे महाशक्ति, जैसे मधु-कैटभसे ब्रह्माकी रक्षा की थी, वैसे हमारी भी करतीं। राजधर्मका आदर्श कर्मयोगके उत्तम सिद्धान्तपर स्थित है, अतएव मुझे चाहिये कि जिस प्रकार इन्द्रादि देवताओंने अधिकारसे निकला हुआ स्वराज्य भगवतीकी कृपासे प्राप्त किया था, उसी प्रकार अपने गये हुए राज्यको पुनः प्राप्त करूँ और न्यायनीतिसे अपनी समस्त प्रजाको सुखी बनाऊँ।' इस विचारके पश्चात् राजाने आगामी जन्ममें अखण्ड राज्य और इस जन्ममें निजबलसे शत्रु-शक्तिका नाश करके अपना गया हुआ राज्य प्राप्त करनेका वर माँगा।

महादेवी भगवतीने उसे कुछ ही दिनोंमें शत्रुओंपर विजयी होकर स्वराज्य प्राप्त करने तथा दूसरे जन्ममें भूमण्डलपर सूर्य-सुत सावर्णि नामक मनु होनेका वर प्रदान किया। जब भगवतीने वैश्यसे वर माँगनेको कहा तो उसने विचार किया कि यह संसार

दु:खमय है। देवताओंका कई बार अधिकारच्युत होना और सुरथ राजाका राज्यभ्रष्ट होना प्रमाणित करता है कि सांसारिक भोगैश्वर्य अनित्य है। जिस तुच्छ सांसारिक सुखमें मेरा मोह था, वह वास्तवमें दु:खरूप ही था। जब त्रैलोक्यपर्यन्तका सुख अनित्य है, तब मुझे इससे विरक्त होकर इन परमेश्वरीकी अनुकम्पासे ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, जिससे नित्य अक्षय सुखस्वरूपमें प्रविष्ट हो सकूँ। निवृत्ति-मार्ग-पथिक ज्ञाननिष्ठ समाधि वैश्यने अपने नाम और जातिको सार्थक करनेवाले उपर्युक्त विचारके अनन्तर श्रीदेवीसे मोहविनाशक ज्ञान माँगा। उसे मनोवांछित वरकी संसिद्धिके लिये ज्ञान देकर श्रीदुर्गा शीघ्र अन्तर्धान हो गयीं।

(मार्कण्डेयपुराण)

# जडभरत और सौवीर-नरेशका संवाद

प्राचीन कालकी बात है, राजा भरत शालग्रामक्षेत्रमें रहकर भगवान् वासुदेवकी पूजा आदि करते हुए तपस्या कर रहे थे। उनकी एक मृगके प्रति आसक्ति हो गयी थी, इसलिये अन्तकालमें उसीका स्मरण करते हुए प्राण त्यागनेके कारण उन्हें मृग होना पड़ा। मृगयोनिमें भी वे 'जातिस्मर' हुए—उन्हें पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहा। अतः उस मृगशरीरका परित्याग करके वे स्वयं ही योगबलसे एक ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हुए। उन्हें अद्वैत ब्रह्मका पूर्ण बोध था। वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप थे, तो भी लोकमें जडवत् (ज्ञानशून्य मूककी भाँति) व्यवहार करते थे। उन्हें हृष्ट-पुष्ट देखकर सौवीर-नरेशके सेवकने बेगारमें लगानेके योग्य समझा और राजाकी पालकी ढोनेमें नियुक्त कर दिया। सेवकके कहनेसे वे सौवीर-राजकी पालकी ढोने लगे। यद्यपि वे ज्ञानी थे, तथापि बेगारमें पकड़े जानेपर अपने प्रारब्धभोगका क्षय करनेके लिये राजाका भार वहन करने लगे, परंतु उनकी गति मन्द थी। वे पालकीमें पीछेकी ओर लगे थे तथा उनके सिवा दूसरे जितने कहार थे, वे सब-के-सब तेज चल रहे थे। राजाने देखा कि अन्य कहार शीघ्रगामी हैं तथा तीव्रगतिसे चल रहे हैं, किंतु यह जो नया आया है, इसकी गति बहुत मन्द है। तब वे बोले—'अरे! क्या तू थक गया? अभी तो तूने थोड़ी ही दूरतक मेरी पालकी ढोयी है। क्या परिश्रम नहीं सहा जाता? क्या तू मोटा-ताजा नहीं है? देखनेमें तो अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट जान पड़ता है।'

ब्राह्मणने कहा—'राजन्! न मैं मोटा हूँ, न मैंने तुम्हारी पालकी ढोयी है, न मुझे थकावट आयी है, न परिश्रम करना

पड़ा है और न मुझपर तुम्हारा कुछ भार ही है। पृथ्वीपर दोनों पैर हैं, पैरोंपर जंघाएँ हैं, जंघाओंके ऊपर ऊरु और ऊरुओंके ऊपर उदर (पेट) है। उदरके ऊपर वक्षःस्थल, भुजाएँ और कंधे हैं तथा कंधोंके ऊपर यह पालकी रखी गयी है। फिर मेरे ऊपर यहाँ कौन-सा भार है? इस पालकीपर तुम्हारा कहा जानेवाला यह शरीर रखा हुआ है। वास्तवमें तुम वहाँ (पालकीमें) हो और मैं यहाँ (पृथ्वी)-पर हूँ—ऐसा जो कहा जाता है, वह सब मिथ्या है। सौवीरनरेश! मैं, तुम तथा अन्य जितने भी जीव हैं, सबका भार पंचभूतोंके द्वारा ही ढोया जा रहा है। ये पंचभूत भी गुणोंके प्रवाहमें पड़कर चल रहे हैं। पृथ्वीनाथ! सत्त्व आदि गुण कर्मोंके अधीन हैं तथा कर्म अविद्याके द्वारा संचित हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंमें वर्तमान हैं। आत्मा तो शुद्ध, अक्षर (अविनाशी), शान्त, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है। सम्पूर्ण प्राणियोंमें एक ही आत्मा है। उसकी न तो कभी वृद्धि होती है और न ह्रास ही होता है। राजन्! जब उसकी वृद्धि नहीं होती और ह्रास भी नहीं होता, तब तुमने किस युक्तिसे व्यंग्यपूर्वक यह प्रश्न किया है कि 'क्या तू मोटा-ताजा नहीं है?' यदि पृथ्वी, पैर, जंघा, ऊरु, कटि और उदर आदि आधारों एवं कंधोंपर रखी हुई यह पालकी मेरे लिये भारस्वरूप हो सकती है तो यह आपत्ति तुम्हारे लिये भी समान ही है, अर्थात् तुम्हारे लिये भी यह भाररूप कही जा सकती है तथा इस युक्तिसे अन्य सभी जन्तुओंने भी केवल पालकी ही नहीं उठा रखी है, पर्वत, पेड़, घर और पृथ्वी आदिका भार भी अपने ऊपर ले रखा है। नरेश! सोचो तो सही, जब प्रकृतिजन्य साधनोंसे पुरुष सर्वथा भिन्न है तो कौन-सा महान् भार मुझे सहन करना पड़ता है? जिस द्रव्यसे यह पालकी बनी है, उसीसे मेरे, तुम्हारे

तथा इन सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरोंका निर्माण हुआ है, इन सबकी समान द्रव्योंसे पुष्टि हुई है।

यह सुनकर राजा पालकीसे उतर पड़े और ब्राह्मणके चरण पकड़कर क्षमा माँगते हुए बोले—'भगवन्! अब पालकी छोड़कर मुझपर कृपा कीजिये। मैं आपके मुखसे कुछ सुनना चाहता हूँ, मुझे उपदेश दीजिये। साथ ही यह भी बताइये कि आप कौन हैं?' और किस निमित्त अथवा किस कारणसे यहाँ आपका आगमन हुआ है?

ब्राह्मणने कहा—'राजन्! सुनो—'मैं अमुक हूँ'—यह बात नहीं कही जा सकती तथा तुमने जो आनेका कारण पूछा है, उसके सम्बन्धमें मुझे इतना ही कहना है कि कहीं भी आने-जानेकी क्रिया कर्मफलका उपभोग करनेके लिये ही होती है। सुख-दुःखके उपभोग ही भिन्न-भिन्न देश (अथवा शरीर) आदिकी प्राप्ति करानेवाले हैं तथा धर्माधर्मजनित सुख-दुःखोंको भोगनेके लिये ही जीव नाना प्रकारके देश (अथवा शरीर) आदिको प्राप्त होता है।

राजाने पूछा—'ब्रह्मन्! 'जो है' (अर्थात् जो आत्मा सत्स्वरूपसे विराजमान है तथा कर्ता-भोक्तारूपमें प्रतीत हो रहा है) उसे 'मैं हूँ'—यों कहकर क्यों नहीं बताया जा सकता? द्विजवर! आत्माके लिये 'अहम्' शब्दका प्रयोग तो दोषावह नहीं जान पड़ता।'

ब्राह्मणने कहा—'राजन्! आत्माके लिये 'अहम्' शब्दका प्रयोग दोषावह नहीं है, तुम्हारा यह कथन बिलकुल ठीक है, परंतु अनात्मामें आत्मत्वका बोध करानेवाला 'अहम्' शब्द तो दोषावह है ही। अथवा जहाँ कोई भी शब्द भ्रमपूर्ण अर्थको लक्षित कराता हो, वहाँ उसका प्रयोग दोषयुक्त ही है। जब

सम्पूर्ण शरीरमें एक ही आत्माकी स्थिति है, तो 'कौन तुम और कौन मैं हूँ'—ये सब बातें व्यर्थ हैं। राजन्! 'तुम राजा हो, यह पालकी है, हमलोग इसे ढोनेवाले कहार हैं, ये आगे चलनेवाले सिपाही हैं तथा लोक तुम्हारे अधिकारमें है'—यह जो कहा जाता है, यह सत्य नहीं है। वृक्षसे लकड़ी होती है और लकड़ीसे यह पालकी बनी है, जिसके ऊपर तुम बैठे हुए हो। सौवीनरेश! बोलो तो, इसका 'वृक्ष' और 'लकड़ी' नाम क्या हो गया? कोई भी चेतन मनुष्य यह नहीं कहता कि 'महाराज वृक्ष अथवा लकड़ीपर चढ़े हुए हैं।' सब तुम्हें पालकीपर ही सवार बतलाते हैं। किंतु पालकी क्या है? नृपश्रेष्ठ! रचनाकलाके द्वारा एक विशेष आकारमें परिणत हुई लकड़ियोंका समूह ही तो पालकी है। यदि तुम इसे कोई भिन्न वस्तु मानते हो तो इसमेंसे लकड़ियोंको अलग करके 'पालकी' नामकी कोई वस्तु ढूँढ़ो तो सही। 'यह पुरुष, यह स्त्री, यह गौ, यह घोड़ा, यह हाथी, पक्षी और यह वृक्ष है'—इस प्रकार कर्मजनित भिन्न-भिन्न शरीरोंमें लोगोंने नाना प्रकारके नामोंका आरोप कर लिया है। इन संज्ञाओंको लोककल्पित ही समझाना चाहिये। जिह्वा 'अहम्' (मैं)-का उच्चारण करती है, दाँत, होठ, तालु और कण्ठ आदि भी उसका उच्चारण करते हैं, किंतु ये 'अहम्' (मैं) पदके वाच्यार्थ नहीं हैं; क्योंकि ये सब-के-सब शब्दोच्चारणके साधनमात्र हैं। किन कारणों या उक्तियोंसे जिह्वा यह कहती है, कि 'वाणी ही 'अहम' मैं हूँ।' यद्यपि जिह्वा यह कहती है तथापि 'यदि मैं वाणी नहीं हूँ' ऐसा कहा जाय तो यह कदापि मिथ्या नहीं है। राजन्! मस्तक और गुदा आदिके रूपमें जो शरीर है, वह पुरुष (आत्मा)-से सर्वथा भिन्न है, ऐसी दशामें मैं किस अवयवके लिये 'अहम्' संज्ञाका

प्रयोग करूँ? भूपालशिरोमणे! यदि मुझ (आत्मा)-से भिन्न कोई भी अपनी पृथक् सत्ता रखता हो तो 'यह मैं हूँ', 'यह दूसरा है'—ऐसी बात भी कही जा सकती है। वास्तवमें पर्वत, पशु तथा वृक्ष आदिका भेद सत्य नहीं है। शरीरदृष्टिसे ये जितने भी भेद प्रतीत हो रहे हैं, सब-के-सब कर्मजन्य हैं। संसारमें जिसे 'राजा' या 'राजसेवक' कहते हैं, वह तथा और इस तरहकी जितनी संज्ञाएँ हैं, वे कोई भी निर्विकार सत्य नहीं हैं। भूपाल! तुम सम्पूर्ण लोकके राजा हो, अपने पिताके पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु, धर्मपत्नीके पति और पुत्रके पिता—इतने नामोंके होते हुए मैं तुम्हें क्या कहकर पुकारूँ? पृथ्वीनाथ! क्या यह मस्तक तुम हो? किंतु जैसे मस्तक तुम्हारा है, वैसे ही उदर भी तो है? (फिर उदर क्यों नहीं हो?) तो क्या इन पैर आदि अंगोंमेंसे तुम कोई हो? नहीं, तो ये सब तुम्हारे क्या हैं? महाराज! इन समस्त अवयवोंसे तुम पृथक् हो, अतः इनसे अलग होकर ही अच्छी तरह विचार करो कि 'वास्तवमें मैं कौन हूँ?'

यह सुनकर राजाने उन भगवत्स्वरूप अवधूत ब्राह्मणसे कहा—'ब्रह्मन्! मैं आत्मकल्याणके लिये उद्यत होकर महर्षि कपिलके पास कुछ पूछनेके लिये जा रहा था। आप भी मेरे लिये इस पृथ्वीपर महर्षि कपिलके ही अंश हैं, अतः आप ही मुझे ज्ञान दें। जिससे ज्ञानरूपी महासागरकी प्राप्ति होकर परम कल्याणकी सिद्धि हो, वह उपाय मुझे बताइये।'

ब्राह्मणने कहा—'राजन्! तुम फिर कल्याणका ही उपाय पूछने लगे। 'परमार्थ क्या है?' यह नहीं पूछते। 'परमार्थ' ही सब प्रकार कल्याणोंका स्वरूप है। मनुष्य देवताओंकी आराधना करके धन-सम्पत्तिकी इच्छा करता है, पुत्र और राज्य पाना चाहता है,

किंतु सौवीरनरेश! तुम्हीं बताओ, क्या यही उसका श्रेय है? (इसीसे उसका कल्याण होगा?) विवेकी पुरुषकी दृष्टिमें तो परमात्माकी प्राप्ति ही श्रेय है, यज्ञादिकी क्रिया तथा द्रव्यकी सिद्धिको वह श्रेय नहीं मानता। परमात्मा और आत्माका संयोग—उनके एकत्वका बोध ही 'परमार्थ' माना गया है। परमात्मा एक अर्थात् अद्वितीय है। वह सर्वत्र समान रूपसे व्यापक, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, जन्म-वृद्धि आदिसे रहित, सर्वगत, अविनाशी, उत्कृष्ट, ज्ञानस्वरूप, गुण-जाति आदिके संसर्गसे रहित एवं विभु है। अब मैं तुम्हें निदाघ और ऋतु (ऋभु)-का संवाद सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो'।

'ऋतु ब्रह्माजीके पुत्र और ज्ञानी थे। पुलस्त्यनन्दन निदाघने उनकी शिष्यता ग्रहण की। ऋतुसे विद्या पढ़ लेनेके पश्चात् निदाघ देविका नदीके तटपर एक नगरमें जाकर रहने लगे। ऋतुने अपने शिष्यके निवासस्थानका पता लगा लिया था। हजार दिव्य वर्ष बीतनेके पश्चात् एक दिन ऋतु निदाघको देखनेके लिये गये। उस समय निदाघ बलिवैश्वदेवके अनन्तर अन्न-भोजन करके अपने शिष्यसे कह रहे थे—'भोजनके बाद मुझे तृप्ति हुई है; क्योंकि भोजन ही अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला है।' यह कहकर वे तत्काल आये हुए अतिथिसे भी तृप्तिके विषयमें पूछने लगे।

तब ऋतुने कहा—'ब्राह्मण! जिसे भूख लगी होती है, उसे ही भोजनके पश्चात् तृप्ति होती है। मुझे तो कभी भूख ही नहीं लगी, फिर मेरी तृप्तिके विषयमें क्यों पूछते हो? भूख और प्यास देहके धर्म हैं। मुझ आत्माका ये कभी स्पर्श नहीं करते। तुमने पूछा है, इसलिये कहता हूँ। मुझे सदा ही तृप्ति बनी रहती है। पुरुष (आत्मा) आकाशकी भाँति सर्वत्र व्याप्त है और मैं वह

प्रत्यगात्मा ही हूँ, अतः तुमने जो मुझसे यह पूछा कि 'आप कहाँसे आते हैं?' यह प्रश्न कैसे सार्थक हो सकता है? मैं न कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और न किसी एक स्थानमें रहता हूँ। न तुम मुझसे भिन्न हो, न मैं तुमसे अलग हूँ। जैसे मिट्टीका घर मिट्टीसे लीपनेपर सुदृढ़ होता है, उसी प्रकार यह पार्थिव देह ही पार्थिव अन्नके परमाणुओंसे पुष्ट होती है। ब्रह्मन्! मैं तुम्हारा आचार्य ऋतु हूँ और तुम्हें ज्ञान देनेके लिये यहाँ आया हूँ, अब जाऊँगा। तुम्हें परमार्थतत्त्वका उपदेश कर दिया। इस प्रकार तुम इस सम्पूर्ण जगत्‌को एकमात्र वासुदेव-संज्ञक परमात्माका ही स्वरूप समझो, इसमें भेदका सर्वथा अभाव है।

तत्पश्चात् एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर ऋतु पुनः उस नगरमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा—निदाघ नगरके पास एकान्त-स्थानमें खड़े हैं। तब वे उनसे बोले—'भैया! इस एकान्त-स्थानमें क्यों खड़े हो?' निदाघने कहा—'ब्रह्मन्! मार्गमें मनुष्योंकी बहुत बड़ी भीड़ खड़ी है; क्योंकि ये नरेश इस समय इस रमणीय नगरमें प्रवेश करना चाहते हैं, इसीलिये मैं यहाँ ठहर गया हूँ।' ऋतुने पूछा—'द्विजश्रेष्ठ! तुम यहाँकी सब बातें जानते हो, अतः बताओ कि इनमें कौन नरेश हैं और कौन दूसरे लोग हैं?' निदाघने कहा—'ब्रह्मन्! जो इस पर्वत-शिखरके समान खड़े हुए मतवाले गजराजपर चढ़े हैं, वे ही ये नरेश हैं तथा जो उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हैं, वे ही दूसरे लोग हैं। यह नीचेवाला जीव हाथी है और ऊपर बैठे हुए सज्जन महाराज हैं।'

ऋतुने कहा—'मुझे समझाकर बताओ, इनमें कौन राजा है और कौन हाथी?' निदाघ बोले—'अच्छा बतलाता हूँ।' यह कहकर निदाघ ऋतुके ऊपर चढ़ गये और बोले—'अब दृष्टान्त

देखकर तुम वाहनको समझ लो। मैं तुम्हारे ऊपर राजाके समान बैठा हूँ और तुम मेरे नीचे हाथीके समान खड़े हो।' तब ऋतुने निदाघसे कहा—'मैं कौन हूँ और तुम्हें क्या कहूँ?' इतना सुनते ही निदाघ उतरकर उनके चरणोंमें पड़ गये और बोले—'निश्चय ही आप मेरे गुरुजी महाराज हैं; क्योंकि दूसरे किसीका हृदय ऐसा नहीं है, जो निरन्तर अद्वैत-संस्कारसे सुसंस्कृत रहता हो।' ऋतुने निदाघसे कहा—'मैं तुम्हें ब्रह्मका बोध करानेके लिये आया था और परमार्थ-सारभूत अद्वैत-तत्त्वका दर्शन तुम्हें करा दिया।'

ब्राह्मण (जडभरत) कहते हैं—'राजन्! निदाघ उस उपदेशके प्रभावसे अद्वैतपरायण हो गये। अब वे सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्न देखने लगे। उन्होंने ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त किया था, उसी प्रकार तुम भी प्राप्त करोगे। तुम, मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत्—सब एकमात्र व्यापक विष्णुका ही स्वरूप है। जैसे एक ही आकाश नीले-पीले आदि भेदोंसे अनेक-सा दिखायी देता है, उसी प्रकार भ्रान्तदृष्टिवाले पुरुषोंको एक ही आत्मा भिन्न-भिन्न रूपोंमें दिखायी देता है।' इस सारभूत ज्ञानके प्रभावसे सौवीरनरेश भव-बन्धनसे मुक्त हो गये। ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही इस अज्ञानमय संसारवृक्षका शत्रु है, इसका निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिये

(अग्निपुराण)

# भगवान् सूर्यका परिवार

भगवान् सूर्य उत्पत्तिके समय एक प्रकाशमय विशाल गोलाकार वृत्तके रूपमें थे, उनका एक नाम मार्तण्ड है। देवशिल्पी विश्वकर्माने अपनी पुत्री संज्ञाका विवाह उनके साथ कर दिया था। संज्ञाके सुरेणु, राज्ञी, द्यौ, त्वाष्ट्री एवं प्रभा आदि अनेक नाम हैं। सूर्यका प्रचण्ड तेज संज्ञाके लिये सर्वथा दु:सह था। तेजसे उसकी आँखें मुँद जाती थीं, फिर भी वह सभी प्रकारसे अपने पतिको संतुष्ट रखती थी। उसी स्थितिमें संज्ञासे वैवस्वत मनु, यम और यमुना नामकी तीन संतानें उत्पन्न हुईं।

संज्ञाके मनमें अपने पतिके सुन्दर रूपके स्पष्ट न देखनेका दु:ख बना रहता था। उसने सोचा कि 'तपस्या करनेसे मुझमें वह शक्ति आ सकती है, जिससे मैं उनके सुन्दर रूपको अच्छी तरह देख सकूँ और उनके अंगस्पर्शको सह सकूँगी।' ऐसा विचार कर उसने अपने शरीरसे एक छाया प्रकट की और उसे उसने पतिकी सेवामें नियुक्त कर स्वयं कुछ दिन पिताके घर रहकर, बादमें उत्तरकुरुमें तपस्या करने चली गयी। अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये उसने अपना स्वरूप अश्विनीका बना लिया था।

छायाका दूसरा नाम विक्षुभा है। उसके प्रत्येक अंग, आकृति, बोल-चाल आदि संज्ञाके सदृश ही थे, इसलिये भगवान् सूर्यने इस रहस्यकी ओर ध्यान नहीं दिया। वे छायाको संज्ञा ही मानते रहे। उससे सावर्णि मनु, शनि और तपती तथा विष्टि (भद्रा) नामकी चार संतानें हुईं। छाया अपनी संतानोंको बहुत प्यार करती थी और वैवस्वत यम तथा यमुनासे द्वेष करती थी। यह विषमता अन्तमें इतनी बढ़ी कि उसने विवादका रूप

धारण कर लिया।

छायाद्वारा निरन्तर उत्पीड़ित होनेपर यमको एक दिन क्रोध हो आया। माताको धमकानेके लिये उन्होंने अपना पैर उठा लिया। यह देखकर छाया कुपित हो उठी, उसने शाप दे दिया कि पितृ-भार्यापर उठाया यह पैर पृथ्वीपर गिर पड़ेगा।

इसी कलहके बीच भगवान् सूर्य आ गये। बालक यमने पितासे कहा—'पिताजी! माता प्रतिदिन हम तीन भाई-बहनोंको तंग किया करती हैं। वह हमें शनि, तपती आदिकी तरह नहीं मानतीं। उसने हमें पृथ्वीपर पैर गिरनेका शाप भी दे डाला है।' यह सुनकर भगवान् सूर्यने छायासे पूछा—'तुम्हारे लिये सभी संतानें बराबर हैं, फिर यह विषमता क्यों करती हो।' भगवान् सूर्यने छायाके शापका परिहार करते हुए कहा कि 'यमका पैर नहीं गिरेगा। तपती संवरणकी पत्नी होगी। विन्ध्याचलके दक्षिण 'तपती' और उत्तरकी ओर 'यमुना' बहेगी। ये दोनों नदियाँ जनताके पाप-तापका नाश करती रहेंगी।' पुनः उन्होंने पुत्रको वरदान दिया कि 'तुम लोकपाल बन जाओ।'

इसके बाद भगवान् सूर्य अपने ससुर त्वष्टाके पास गये। वे जानना चाहते थे कि मेरी प्रियतमा मुझे छोड़कर तप क्यों कर रही है? त्वष्टाने ध्यान लगाकर सब बातें जान लीं। उन्होंने बताया कि संज्ञाको आपका तेज असह्य था। आपमें इतना अधिक प्रकाश है कि आपका रूप उससे ढक जाता है। यदि आप चाहें तो प्रकाशको तराशकर कम कर दिया जाय। भगवान् सूर्य अपनी पत्नीकी प्रसन्नताके लिये कष्ट सहनेको तैयार हो गये, तब त्वष्टा (विश्वकर्मा)-ने भ्रमि (खराद)-पर चढ़ाकर उनके तेजको छाँट दिया।

भगवान् सूर्यको अपनी पत्नीके अनुरूप रूप पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपनी पत्नीके पास उत्तरकुरु चले गये। वहाँ उन्होंने अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये अश्विनी-रूपमें स्थित अपनी पत्नीको पहचान लिया और स्वयं अश्वका रूप धारणकर उससे मिले। बेचारी अश्विनी घबरा गयी। वह डर गयी कि किसी दूसरे पुरुषने मेरा स्पर्श न कर लिया हो। तब उसने दोनों नाकोंसे सूर्यके तेजको फेंक दिया। उसीसे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई। तेजके अन्तिम अंशसे रेवन्तकी उत्पत्ति हुई। बड़े होनेपर दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हुए और रेवन्तको गुह्यकों एवं अश्वोंका आधिपत्य प्राप्त हुआ।

इस तरह भगवान् सूर्यको संज्ञासे वैवस्वत मनु, यम, यमुना, अश्विनीकुमार और रेवन्त तथा छायासे शनि, तपती, विष्टि और सावर्णि मनु ये दस संतानें हुईं। विषमता अच्छी नहीं होती। भगवान् छोटे-बड़े सबमें समानरूपसे विद्यमान हैं। अतः सदा सम व्यवहार ही करना चाहिये। यही साम्ययोग है। इस कथासे व्यक्त होता है कि विषमताके व्यवहारसे कोई लाभ नहीं है।

(भविष्यपुराण)

~~○~~

# भक्तिसे सर्वातिशायी सामर्थ्य

भगवान् शंकरकी भक्तिसे मनुष्यमें इतनी सामर्थ्य आ जाती है कि वह देवोंको भी अभिभूत कर सकता है। विप्र दधीच भगवान् शंकरके उत्तम भक्त थे। वे भस्म धारण करते थे और सदा भगवान् शंकरका स्मरण किया करते थे। राजा क्षुप इनके मित्र थे। ये क्षुप कोई साधारण राजा नहीं थे। असुरोंके युद्धमें इनसे इन्द्र सहायता लेते रहते थे। क्षुपने असुरोंपर इतना पराक्रम दिखलाया कि इन्द्रने प्रसन्न होकर इन्हें वज्र दे दिया था। इस पुरस्कारको पाकर राजा क्षुपका अहंकार बढ़ गया। वे अपने मित्र दधीचसे बार-बार कहा करते थे कि मैं आठ लोकपालोंके अंशोंसे बना हूँ, अतः मैं ईश्वर हूँ। आप भी मेरी पूजा किया करें।

दधीचको यह बात अच्छी न लगी। धीरे-धीरे दोनों मित्रोंमें मनोमालिन्य बढ़ने लगा। एक दिन दधीचने जब क्षुपके मस्तकपर मुष्टिक प्रहार किया, तब मदोन्मत्त क्षुपने उनपर वज्र चला दिया।

वज्रसे आहत होनेपर दधीचने महर्षि शुक्रका स्मरण किया। महर्षि शुक्र संजीवनी विद्याके विशेषज्ञ थे। योगबलसे वहाँ पहुँचकर उन्होंने दधीचके क्षत-विक्षत शरीरको जोड़कर पूर्ववत् बना दिया। फिर उन्होंने दधीचको परामर्श दिया कि 'तुम भगवान् शिवकी आराधना कर अवध्य बन जाओ। वे परब्रह्म हैं, आशुतोष हैं। उन्हींकी शरण लो। मैंने उन्हींसे मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की है।'

तत्पश्चात् दधीचने आराधना कर भगवान् शंकरसे अवध्यता प्राप्त कर ली। भगवान् शंकरने दधीचकी हड्डीको वज्र बना दिया और उन्हें कभी दीन-हीन न होनेका वरदान दे दिया। दधीच समर्थ होकर राजा क्षुपके पास पुनः पहुँच गये। दोनोंमें अहंकारकी

मात्रा बढ़ी हुई थी। राजा क्षुपने उनपर पुनः वज्रका प्रहार किया, किंतु इस बार दधीचका बाल भी बाँका न हुआ। उनमें दीन-भाव भी न आया।

इस पराभवसे राजा क्षुपने विष्णुदेवकी आराधना की। विष्णुदेवने प्रसन्न होकर राजाको समझाया कि 'शिवके भक्तको किसीसे भय नहीं होता। दधीचकी तो बात ही निराली है।' किंतु राजा क्षुपका आग्रह देख विष्णुदेव ब्राह्मणका रूप धारण कर दधीचके पास पहुँचे। शिव-भक्तिके प्रभावसे दधीचने विष्णुदेवको पहचान लिया और कहा कि 'मैं आपकी भक्तवत्सलताको जानता हूँ, किंतु भगवान् शंकरके प्रभावसे मुझे किसीका भय नहीं हैं।' श्रीविष्णुने कहा—'दधीच! भगवान् शंकरकी कृपासे तुम्हें सचमुच भय नहीं है और तुम सर्वज्ञ हो गये हो, किंतु झगड़ा मिटानेके लिये एक बार तुम कह दो कि मैं डरता हूँ।' दधीच इसके लिये तैयार नहीं हुए, तब विवश होकर श्रीविष्णुको चक्र उठाना पड़ा। राजा क्षुप वहीं विद्यमान थे। चक्रको निस्तेज देखकर श्रीविष्णुदेवने अपना सब अस्त्र-शस्त्र छोड़कर दधीचको अपना विश्वरूप दिखलाया। तब दधीचने भी भगवान्‌की कृपासे अपने शरीरमें हजारों ब्रह्मा, विष्णु, महेश दिखलाये।

राजा क्षुप दधीचका यह अदभुत सामर्थ्य देखकर चकित हो गये। तब उन्होंने भगवान् शंकरकी भक्तिके महत्त्वको समझकर दधीचकी पूजा की। इस तरह दधीचने सिद्ध कर दिया कि भक्ति सबसे बढ़कर है—भक्ति नियन्तासे भी श्रेष्ठ है।

(लिंगपुराण)

# रुद्रावतार नन्दीश्वर

शिलाद नामके एक महामनस्वी ब्राह्मण थे। उन्होंने सत्पुत्रकी प्राप्तिके लिये इन्द्रकी उपासना की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्रने शिलादसे वर माँगनेको कहा। शिलादने वरदानमें माँगा—'देव! मैं ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो अयोनिज (गर्भसे न पैदा हुआ) हो और मृत्युसे रहित हो।' इन्द्रने कहा—'मैं ऐसा पुत्र दे सकता हूँ जो योनिज हो और मृत्युसे युक्त हो; क्योंकि मृत्युसे हीन कोई नहीं है। स्वयं ब्रह्मा भी मृत्युसे रहित नहीं हैं।' जब शिलादने अपनी उसी इच्छाको दोहराया, तब इन्द्रने कहा—'यदि परमात्मस्वरूप शंकर प्रसन्न हो जायँ तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है। वे ही तुम्हें अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र दे सकते हैं। मुझमें या अन्य देवोंमें भी यह सामर्थ्य नहीं है।'

इन्द्रसे उपदेश पाकर शिलाद शंकरकी तपस्यामें लग गये। हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, किंतु अध्यवसायी शिलाद मुनिके लिये यह क्षण-सा प्रतीत हुआ। इस बीचमें शिलादके शरीरमें हड्डीमात्र ही शेष रह गयी थी। अन्तमें भगवान् शंकर पार्वतीके साथ प्रकट हो गये। भगवान्‌के स्पर्शसे उनका शरीर भला-चंगा हो गया। उन्होंने शिलादकी इच्छाके अनुरूप इन्हें अयोनिज और मृत्युरहित पुत्र होनेका वरदान दिया।

शिलाद वरदान पाकर अपने आश्रममें आ गये। जब वे यज्ञमण्डपमें पहुँचे तो उन्होंने एक दिव्य शिशुको प्रकट होते देखा। उस अवसरपर सारी दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं और आकाशसे फूलोंकी वृष्टि होने लगी, गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि और मुनि वेदोंका पाठ करने

लगे। शिलाद मुनि पुत्ररूपमें परमात्माको पाकर गद्‌गद होकर बोले—'पुत्र! तुमने मुझे आनन्दमग्न कर दिया है, इसलिये तुम्हारा नाम 'नन्दी' होगा। तुम्हें पा लेनेसे मेरे पितरोंका उद्धार हो गया।

पुत्रको लेकर शिलाद अपनी कुटियामें आ गये। वहाँ पहुँचकर नन्दी अपने दैवी स्वरूपको छिपाकर मनुष्यरूपमें आ गये। शिलाद मुनिने नन्दीके जातकर्म आदि संस्कार किये।

एक दिन शिलाद मुनिके आश्रमपर तप एवं योगबलसे समन्वित मित्र और वरुण नामके दो देवता आये। उन्होंने बच्चेको देखकर शिलाद मुनिसे कहा—'मुने! यह बच्चा तो सब शास्त्रोंका जानकार होगा, किंतु इसकी आयु केवल एक वर्ष और शेष है।' यह सुनकर शिलाद मुनिके शोकका कोई आर-पार न रहा। वे बच्चेको गलेसे लगाकर जोर-जोरसे रोने लगे। रोना-पीटना सुनकर शिलादके पिता शालंकायन भी वहाँ आ गये। वे भी रोने लगे। इस तरह अपने पिता और पितामहको दुःखी देखकर बालकने उन्हें सान्त्वना दी कि 'मैं मृत्युको जीतनेके लिये भगवान् शंकरकी आराधना करने जा रहा हूँ। आपलोग निश्चिन्त हो जायँ।' इतना कहकर नन्दी एकान्त स्थानपर जाकर भगवान् शंकरकी आराधना करने लगे।

आशुतोष भगवान् शंकर शीघ्र ही प्रकट हो गये और बोले—'वत्स! तुम्हारा देह देखनेके लिये मनुष्यका है, वस्तुतः यह तो सत्, चित्, आनन्दरूप है। मृत्यु तुम्हारे पास कैसे आयेगी?' ऐसा कहकर भगवान् शंकरने नन्दीका स्पर्श किया। उस स्पर्शसे नन्दी आनन्दके समुद्रमें मग्न हो गये। भगवान् शंकरने आगे कहा—'तुम मेरे अत्यन्त प्रिय, मेरे पास रहनेवाले और मेरे ही तुल्य पराक्रमी होओगे।' इतना कहकर भगवान्‌ने नन्दीको

कमलकी माला पहनायी। वरदानरूपमें भगवान् शंकरने अपनी जटासे जल निकालकर उसे नदीका रूप दे दिया, जो जटोदका नामसे विख्यात हुई। इसके बाद भगवान् शंकरने नन्दीको शिलादकी गोदमें डाल दिया। फिर प्रेमसे विभोर भगवान्ने तीन धाराओंसे नन्दीका अभिषेक किया। वे तीन धाराएँ तीन नदियोंमें बदल गयीं। यह देखकर भगवान्के वृषभने निनाद किया। उस नादसे एक दूसरी नदी प्रकट हुई, जिसका नाम 'वृषभध्वनि' हुआ। इसके बाद भगवान् शंकरने नन्दीके सिरपर मुकुट और कानोंमें कुण्डल पहनाये। नन्दीको पूजित देखकर मेघोंने भी अभिषेक किया। इससे भी एक नदी प्रकट हो गयी जिसे जाम्बुनदी कहते हैं। ये पाँचों पवित्र नदियाँ जप्येश्वर महादेवके पास हैं। इसके बाद भगवान् शंकरने नन्दीको सब गणोंके आधिपत्यपदपर अभिषिक्त किया। उस अवसरपर सभी देवताओंने वहाँ उपस्थित होकर नन्दीको भिन्न-भिन्न उपहार दिये।

(लिंगपुराण)

~~○~~

# महर्षि वसिष्ठकी क्षमाशीलता

राजा त्रिशंकुके यज्ञमें आमन्त्रणके अवसरपर वसिष्ठपुत्र शक्ति और विश्वामित्रमें विवाद हो गया। विश्वामित्रने शक्तिको शाप दे दिया और उनकी प्रेरणासे 'रुधिर' नामक राक्षसने शक्ति ऋषिको खा लिया। महर्षि वसिष्ठके दूसरे निन्यानबे पुत्रोंको भी उसने खा डाला। महर्षि वसिष्ठका एक पुत्र भी नहीं बचा।

महर्षि वसिष्ठ क्षमाकी मूर्ति थे। उनका सिद्धान्त था कि अपने किये हुए कर्मका ही फल भोगना पड़ता है। कोई किसीको मार नहीं सकता। यदि कोई मारता है तो वह अपने किये हुए किसी कुकर्मका परिणाम है।

इसलिये महर्षि वसिष्ठने विश्वामित्र आदिसे बदला न लिया, क्षमा कर दिया, किंतु धर्मप्राण लोग वंशके क्षयको नहीं सह पाते; क्योंकि इससे पितरोंका कल्याण नहीं होता। इसलिये महर्षि वसिष्ठ बहुत उद्विग्न हो गये। माता अरुन्धतीके शोककी सीमा न थी। पुत्रवधू अदृश्यन्तीके दुःखका तो कोई आर-पार ही न था। उसका तो सर्वस्व ही लुट गया था। इस घोर कष्टमें भी कष्ट पहुँचानेवालेके प्रति क्षमाका भाव रखना बहुत बड़ी मानवता है।

महर्षि वसिष्ठ और अरुन्धतीने तो प्राणोंको ही त्याग देना चाहा। उनके विचारमें आया कि वंशक्षयके बाद उनका जीना उचित नहीं है। उनकी इस स्थितिको देखकर पुत्रवधू अपना दुःख भूल गयी और अपने सास-ससुरकी सँभालमें लग गयी। उस स्थितिको देखकर पृथ्वी माता भी रो पड़ी थीं। अदृश्यन्तीने चरण पकड़कर सास-ससुरको मनाते हुए कहा—'आपके वंशका अभी क्षय नहीं हुआ है; क्योंकि आपका पौत्र मेरे गर्भमें सुरक्षित है।

महर्षि वसिष्ठ और माता अरुन्धती आश्वस्त हो गये; किंतु शोक और भयसे व्यथित पुत्रवधूके कष्टसे वे दोनों फिर रो पड़े।'

इसी बीचमें महर्षि वसिष्ठके कानोंमें वेदकी ऋचाओंकी ध्वनि आने लगी। वह स्वर बहुत स्पष्ट और मधुर था। तब वे सोचने लगे कि वेदोंकी इन ऋचाओंका शक्तिकी तरह कौन उच्चारण कर रहा है? इसी बीच भगवान् विष्णु प्रकट हो गये। उन्होंने महर्षि वसिष्ठको आश्वासन देते हुए कहा—'वत्स! तुम्हारे पौत्रके मुखसे ये मधुर ऋचाएँ निकल रही हैं। तुम्हारा वंश डूबा नहीं है। शोक छोड़ो। तुम्हारा यह पौत्र सदाशिवका भक्त होगा और समस्त कुलको तार देगा।' इतना कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये।

महर्षि वसिष्ठके इसी पौत्रका नाम पराशर रखा गया। बालक पराशरने गर्भमें ही अपने पिता शक्तिद्वारा शिक्षा पायी थी। पृथ्वीपर आनेके बाद बच्चेकी दृष्टिसे अपनी माताकी हीनता छिपी न रही। उसने पूछा—'माँ! तुमने सौभाग्यसूचक आभूषण अपने शरीरसे क्यों हटा रखे हैं?' माता अपना दुःख सुनाकर पुत्रके कोमल हृदयको दुखाना नहीं चाहती थी। वह चुप रह गयी। तब बच्चेने फिर पूछा—'माँ! मेरे पिताजी कहाँ हैं?' इतना सुनते ही अदृश्यन्तीके धीरजका बाँध टूट गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। 'तुम्हारे पिताको राक्षस खा गया।'—इतना कहकर वह मूर्च्छित हो गयी। इस दुःस्थितिसे महर्षि वसिष्ठ भी बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। यह करुण दृश्य तेजस्वी बच्चेसे सहा न गया। जिस कारणसे उसके बूढ़े दादा एवं दादी तथा माता मूर्च्छित हो जायँ, उस कारणपर बच्चेका क्रोधित होना स्वाभाविक था। वह आश्रमवासियोंसे सब समाचार सुनकर सारे विश्वको ही

जला देनेके लिये उद्यत हो गया।

पराशरने भगवान् शंकरकी अर्चना कर शक्ति प्राप्त कर ली और जब पराशर विश्व-संहारकी योजना बनाने लगे तब महर्षि वसिष्ठने समझाया—'वत्स! तुम्हारा यह क्रोध अयुक्त नहीं है, किंतु विश्वके विनाशकी योजना सही नहीं है। इसे छोड़ दो।' यह बात बालककी समझमें आ गयी, किंतु राक्षसोंसे उसका क्रोध नहीं हटा। उसने 'राक्षस-सत्र' प्रारम्भ कर दिया। मन्त्रकी शक्तिसे राक्षस अग्निमें गिर-गिरकर भस्म होने लगे। तब महर्षि वसिष्ठने पराशरको पुनः समझाया—'बेटा! अधिक क्रोध मत करो, इसे छोड़ दो। कोई किसीको हानि नहीं पहुँचा सकता। अपने कियेके अनुसार ही हानि प्राप्त होती है। अतः किसीपर क्रोध करना अच्छा नहीं है। निर्दोष राक्षसोंको जलाना बंद करो। आजसे यह अपना सत्र ही समाप्त कर दो। सज्जनोंका काम क्षमा करना होता है।'

पराशरने अपने पितामहका आदर कर उस सत्रको समाप्त कर दिया। इस घटनासे राक्षसोंके आदि कुलपुरुष महर्षि पुलस्त्य बहुत प्रभावित हुए और उस स्थलपर प्रकट हुए। उन्होंने पराशरसे कहा—'बेटा! क्षमा ग्रहण कर तुमने वैरको जो भुला दिया है, यह तुम्हारे कुलके अनुरूप ही है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम समस्त शास्त्रोंको जान जाओगे और वरदान देता हूँ कि विष्णुपुराणके रचयिता होगे। मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारी बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्तिमें निर्मल बनी रहेगी।' महर्षि वसिष्ठने भी पुलस्त्यके इन वचनोंका अनुमोदन करते हुए बालकको साधुवाद दिया।

(लिंगपुराण)

~~○~~

# संगीतसे भगवत्प्राप्ति

त्रेतायुगमें कौशिक नामके एक ब्राह्मण थे। भगवान्‌में उनका अत्यधिक अनुराग था। खाते-पीते, सोते-जागते प्रतिक्षण उनका मन भगवान्‌में लगा रहता था। उनकी साधनाका मार्ग था संगीत। वे भगवान्‌के गुणों और चरित्रोंको निरन्तर गाया करते थे। ये सभी गान प्रेमार्द्र-हृदयसे उपजे होते थे। वे भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह कर लेते थे और शेष समय भगवान्‌में ही लगाते थे। उनके बहुत-से शिष्य हो गये थे, जिनमें सात शिष्य प्रमुख थे। प्रेमी शिष्योंका योग मिलनेसे कौशिकका गान और हृदयाकर्षक हो गया था। भक्त पद्माक्षने उनके और उनके शिष्योंके भोजनका भार अपने ऊपर ले लिया था।

कौशिकके शिष्योंमें एक दम्पति भी थे। उनमें पतिका नाम था मालव और पत्नीका मालवी। मालव भगवान्‌को दीपकोंकी मालासे सजाता रहता था और उसकी पत्नी मालवी मन्दिरको झाड़-पोंछकर सदा चमकाये रहती थी। दोनों पति-पत्नी कौशिकके गानको सुनते और आनन्दमें निरन्तर विभोर रहते थे।

कौशिकके दिव्यगानकी चर्चा चारों ओर हो रही थी। कुशस्थलीसे आकर पचास ब्राह्मण इनकी संगीत-साधनामें सम्मिलित हो गये थे। राजा कलिंगने भी यह चर्चा सुनी तो वह भी कौशिकके पास पहुँचा। वह अहंकारी था। उसने कौशिकसे कहा—'तुम बहुत अच्छा गाते हो। आज मेरी कीर्तिका गान करो, जिससे ये कुशस्थलीके वासी उसे मनोयोगसे सुनें।' कौशिकने विनम्रतासे कहा—'महाराज! मेरी जीभ और वाणी केवल भगवान्‌के ही गुणोंको गाती हैं, अन्य प्राकृतिक वस्तुओंको नहीं। अतः आप मुझे क्षमा करें।' इसी

बातको उनके गायक शिष्योंने भी दुहराया। श्रोताओंने भी नम्रतासे कहा कि 'हमारा भी यही नियम है। हम अपने कानोंसे केवल भगवान्‌के गुणों और यशको सुनें। अत: आप हमें भी क्षमा करें।' यह सुनते ही राजा क्रोधसे जल उठा। उसने लोहेकी कीलसे उनकी जीभ और कानोंको छेदना चाहा। राजाकी यह चेष्टा जानकर सबने अपनी-अपनी जीभों और कानोंमें स्वयं कीलें धँसा लीं। राजाका क्रोध और बढ़ गया। उसने कौशिक और उनके साथियोंको अपमानित कर अपने राज्यसे बाहर करवा दिया। उनकी सारी सम्पत्ति छिनवा ली। संत कौशिक अपने दल-बलके साथ उत्तराखण्डकी ओर चले गये।

बहुत दिनोंके बाद जब कौशिक आदिकी मृत्यु हुई, तब ब्रह्माने बड़े आदरके साथ लोकपालोंके द्वारा उन्हें और उनके साथियोंको अपने लोकमें बुला लिया। वे आधे मुहूर्तमें ब्रह्माके सम्मुख पहुँच गये। ब्रह्माने उनका अत्यधिक सम्मान किया। इस लोकके निवासियोंने इतना अधिक सम्मान पाते किसी औरको नहीं देखा था। इसलिये वहाँ हलचल मच गयी।

इसी बीच विष्णुके दूत वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने सम्मानके साथ कौशिक और इनके साथियोंको विष्णुलोक पहुँचाया। कौशिकके सम्मानमें ब्रह्मा और वहाँके निवासी भी उनके साथ गये। इस तरह विष्णुलोकमें बहुत बड़ी भीड़ एकत्र हो गयी। भगवान् विष्णुने कौशिक और उनके साथियोंको स्नेहसिक्त नेत्रोंसे देखा। उस समय जयघोषसे सारा वातावरण गूँज उठा। भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीको आदेश दिया कि वे कौशिक और उनके शिष्योंको मेरे समीपमें ही स्थान दें। फिर भगवान्‌ने कौशिककी ओर उन्मुख होकर प्रेमार्द्र-वचनोंसे कहा—'वत्स!

तुम अपने शिष्योंके साथ मेरे समीप ही रहो। मैंने तुम्हें अपने गणोंका आधिपत्य भी प्रदान किया है।' इसके बाद भगवान्‌ने मालव और मालवीको कृतार्थ करते हुए कहा—'तुम दोनों मेरे लोकमें आनन्दसे रहो और सुन्दर गान सुनकर आह्लाद प्राप्त करते रहो।' इसके बाद भगवान् पद्माक्षसे बोले—'वत्स! तुम कुबेर हो जाओ। धनोंका स्वामी बनकर सुखसे इस लोकमें विहार करो।' तत्पश्चात् भगवान्‌ने प्रेमसिक्त सम्मान देते हुए सबको अपने समीप स्थान दिया। सभीको अपने हस्तकमलोंसे प्रेमपूर्वक स्पर्श भी किया।

इतना सम्मान देनेके बाद भी भगवान्‌को संतोष नहीं हो रहा था। उन्होंने उनके स्वागतमें संगीतका विशाल आयोजन किया। विश्वके गायक तुम्बुरु गन्धर्व बुलाये गये। भगवान् दिव्य सिंहासनपर विराजमान थे। संगीत गाती हुई माता लक्ष्मी भी आ विराजीं। साथ ही वीणाके गुणके तत्त्वको जाननेवाली करोड़ों अप्सराएँ वाद्यविशारदोंके साथ वहाँ आ पहुँचीं। पहलेसे ही वह स्थल ब्रह्मलोकवासियोंसे पूरी तरह भरा था। इस रसिक संगीत-मण्डलीको वहाँ घुस पाना कठिन हो रहा था। भगवती लक्ष्मीकी आज्ञासे उनसे देवता और मुनियोंको दूर ही बैठाया। देवर्षि नारद भगवान्‌के बिलकुल समीपमें ही रहनेवाले हैं; पर संगीत न जाननेके कारण उन्हें भी दूर हटा दिया गया था। संगीतज्ञ तुम्बुरुको लक्ष्मी और भगवान् विष्णुके समीपमें बैठाया गया। गायकराजकी मजी अँगुलियाँ वीणाके तारोंपर थिरकनें लगीं। उनके सधे कण्ठकी फूटती स्वर-लहरियाँ कण-कणको आह्लादित करने लगीं। रसकी धाराएँ बह निकलीं। इस तरह कौशिक और उनके साथियोंका बहुत ही भावपूर्ण स्वागत किया गया।

## देवर्षि नारदकी संगीत-साधना

कौशिकके स्वागत-समारोहमें नारदजीको जो लक्ष्मी-नारायणके समीपसे दूर हटाया गया था और उनकी जगह तुम्बुरुको बैठाया गया था, वह नारदजीको बहुत ही खला। वे समझ गये कि मेरा इतना बड़ा अध्ययन, इतनी बड़ी तपस्या आदि सब कुछ संगीतके सामने तुच्छ-सा हो गया। इसपर वे भी संगीतके ज्ञानके लिये उत्सुक हो गये और घोर तप करने लगे।

हजारों वर्ष बीतनेपर आकाशवाणी हुई—'नारद! यदि तुम गान जानना चाहते हो तो मानसरोवरके उत्तरी शैलपर चले जाओ, वहाँ गानबन्धु नामक उलूक रहते हैं, उनसे सीखकर संगीतके जानकार हो जाओगे।'

देवर्षि नारद अविलम्ब मानसरोवरके उत्तर शैलपर जा पहुँचे। वहाँ देवर्षिने देखा कि गानबन्धु बीचमें बैठे हैं और उन्हें चारों ओरसे घेरकर गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएँ और यक्ष बैठे हुए हैं। ये सब-के-सब गानबन्धुसे सीखकर गानविद्यामें पारंगत हो चुके थे और आनन्दकी लहरोंमें डूब-उतरा रहे थे।

देवर्षि नारदको अपने पास आया देखकर गानबन्धुने उठकर नमस्कार किया। जब गानबन्धुने जाना कि देवर्षि नारद मुझसे संगीत सीखना चाहते हैं, तब उन्हें बहुत ही प्रसन्नता हुई। देवर्षि नारदने एक हजार दिव्य वर्षतक संगीतकी साधना की। संगीत सीख लेनेपर देवर्षि नारदने गानबन्धुको गुरुदक्षिणा देनी चाही। गानबन्धुने कहा—'मैं चाहता हूँ कि संगीतद्वारा लम्बी अवधितक भगवान्‌की सेवा करता रहूँ। इसलिये आवश्यक है कि मेरी आयु लम्बी और स्वास्थ्य सुदृढ़ हो।' देवर्षिने उनकी आयु एक कल्पकी कर दी और स्वास्थ्य भी सुदृढ़ कर दिया। साथ ही यह भी वरदान

दिया कि 'अगले कल्पमें आप गरुड होंगे।'

देवर्षि नारद संगीत सीखकर भगवान्‌के पास पहुँचे। भगवान्‌ने उनका गान सुनकर कहा—'अभी तुम तुम्बुरुके समकक्ष नहीं हुए हो। कृष्णावतारमें मैं तुम्हें सर्वोच्च ज्ञानसे सम्पन्न कर दूँगा।'

देवर्षि नारद वीणापर भगवान्‌का गुणानुवाद गाते हुए तीनों लोकोंमें विचरने लगे। उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। कृष्णावतार होनेपर ये भगवान्‌के पास पहुँचे। भगवान्‌ने उन्हें संगीत सीखनेके लिये जाम्बवतीके पास भेज दिया। रानी जाम्बवतीने एक वर्षतक देवर्षिको संगीतकी शिक्षा दी। दूसरी बार भगवान्‌ने देवर्षिको सत्यभामाके पास भेजा। एक वर्ष बीतनेके बाद देवर्षिको महारानी रुक्मिणीके अनुशासनमें रखा। महारानी रुक्मिणीने उन्हें तीन वर्षोंतक सिखाया। तत्पश्चात् भगवान्‌ने स्वयं देवर्षिको संगीत सिखलाया। इसके बाद भगवान्‌ने देवर्षिसे कहा कि 'अब आप तुम्बुरुसे आगे बढ़ गये हैं।' इस तरह बहुत दिनोंके बाद देवर्षि नारदकी संगीत-साधना पूरी हुई।

(लिंगपुराण)

~~○~~

# द्वादशाक्षर-मन्त्रकी महिमा

एक बार ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—'भगवन्! आप ऐसा उपाय बतायें, जिससे सभी पापोंसे छुटकारा मिल जाय, अलक्ष्मी (दरिद्रा) छोड़कर चली जायँ और निरन्तर लक्ष्मीका निवास हो।' सूतजीने कहा—'ऋषियो! इसके लिये मनुष्यको निरन्तर विहित कर्म करते हुए भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये। जो चलते, खाते, सोते, जागते, आँख मींचते और खोलते हुए भगवान्‌का जप करता है, वह सभी पापोंसे छूट जाता है और उत्तम गति प्राप्त करता है। दुःसहकी पत्नी दरिद्रा भगवान्‌का नाम सुनकर तुरंत भाग खड़ी होती है।'

सूतजीने आगे कहा—'ऋषियो! सब शास्त्रोंका मन्थन कर और बारंबार विचार कर मैं इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि भगवान्‌का निरन्तर ध्यान करना चाहिये और निरन्तर भगवान्‌के नामका उच्चारण करना चाहिये। द्वादशाक्षरमन्त्रका जप बहुत प्रभावशाली है। उसका स्वरूप यह है—'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**' यज्ञोपवीत धारण करनेवाले इस मन्त्रके पहले '**ॐ**' लगावें और अन्य लोग '**श्री**' लगावें। इस तरह यह मन्त्र बारह अक्षरवाला हो जाता है। इस सम्बन्धमें एक कथा है।

एक ब्राह्मणको कठिन तपस्याके बाद एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम ऐतरेय था। उसका उपनयन किया गया। इसके बाद पिता उसे पढ़ाने बैठे, किंतु बच्चेकी जीभ ही नहीं हिलती, वह कुछ बोल नहीं पाता। उसकी जीभ केवल '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस मन्त्रको ही बोल पाती थी। इसके अतिरिक्त उसकी जीभसे और किसी शब्दका उच्चारण नहीं होता। पिता

पढ़ाकर थक गये। अन्तमें निराश होकर उसके पिताने दूसरा विवाह किया। नयी पत्नीसे जो पुत्र हुए, वे चारों वेदोंके विद्वान् हुए और उन्होंने कमाकर धन-धान्यसे घरको भर दिया। उनकी माता बहुत प्रसन्न रहती थी, किंतु ऐतरेयकी माता शोकसे सदा ग्रस्त रहती थी। एक दिन उसने ऐतरेयसे कहा—'बेटा! तुम्हारे और भाई वेद-वेदांगके उद्भट विद्वान् हो गये हैं। वे कमाकर अपनी माताको आनन्दित करते रहते हैं। मैं अभागिन हूँ, इसलिये तुम मेरे पुत्र हुए। तुमसे मुझे कोई सुख न मिला। मेरा तो मर जाना ही अच्छा है।'

माताको व्यथित जानकर ढाढस बँधाते हुए ऐतरेयने कहा—'आज मैं तुम्हारे लिये बहुत-सा धन-धान्य ले आऊँगा।' इतना कहकर वह एक यज्ञ-मण्डलमें चला गया। इसके पहुँचते ही वैदिकोंके मन्त्र भूल गये। उन्हें एक मन्त्र भी स्मरण नहीं हो रहा था। वे बहुत असमंजसमें पड़ गये थे। ऐतरेयने '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' मन्त्रका स्पष्ट उच्चारण किया। सुनते ही वैदिकोंके मुखसे ठीक-ठीक उच्चारण होने लगा। वैदिकोंके मनमें ऐतरेयके प्रति श्रद्धा हो गयी। उन लोगोंने ऐतरेयको प्रणाम किया और विधानके साथ उनकी पूजा की। उसके बाद होता, उद्गाता आदि सभी ऋत्विज् उनकी स्तुति करने लगे। यज्ञकी पूर्णाहुतिके बाद स्वर्ण-रत्न आदिसे ऐतरेयका स्वागत किया गया। ऐतरेयने सब धन माताको समर्पित कर दिया। उस समय पुष्पवृष्टिसे सारा वातावरण सुगन्धित हो उठा, द्वादशाक्षरमन्त्रका जप असाध्यको भी साध्य बना देता है।

(लिंगपुराण)

# विश्वासकी विजय

## [ श्वेतमुनिपर शंकरकी कृपा ]

'मृत्यु क्या कर सकती है? मैंने मृत्युंजय शिवकी शरण ली है।' श्वेतमुनिने पर्वतकी निर्जन कन्दरामें आत्मविश्वासका प्रकाश फैलाया। चारों ओर सात्त्विक पवित्रताका ही राज्य था, आश्रममें निराली शान्ति थी। मुनिकी तपस्यासे वातावरणकी दिव्यता बढ़ गयी।

श्वेतमुनिकी आयु समाप्तिके अन्तिम श्वासपर थी। वे अभय होकर रुद्राध्यायका पाठ कर रहे थे, भगवान् त्र्यम्बकके स्तवनसे उनका रोम-रोम प्रतिध्वनित था।

वे सहसा चौंक पड़े। उन्होंने अपने सामने एक विकराल आकृति देखी, उसका समस्त शरीर काला था और उसने अति भयंकर काला वस्त्र धारण कर रखा था।

'**ॐ नमः शिवाय**'—इस पवित्र मन्त्रका उच्चारण करते हुए श्वेतमुनिने अत्यन्त करुणभावसे शिवलिंगकी ओर देखा। उन्होंने उसका स्पर्श करके बड़े विश्वासके साथ अपरिचित आकृतिसे कहा—'तुमने हमारे आश्रमको अपवित्र करनेका दुःसाहस किस प्रकार किया? यह तो भगवान् शिवके अनुग्रहसे अभय है।' मुनिने पुनः शिवलिंगका स्पर्श किया।

'अब आप धरतीपर नहीं रह सकते। आपकी अवधि पूरी हो गयी। आपको यमलोक चलना है।' भयंकर आकृतिवाले कालने अपना परिचय दिया।

'अधम, नीच! तुमने शिवकी भक्तिको चुनौती दी है! जानते नहीं, भगवान् शंकर कालके भी काल—महाकाल हैं।' श्वेतमुनिने

शिवलिंगको अंकमें भरकर निर्भयताकी साँस ली।

'शिवलिंग निश्चेतन है, शक्तिशून्य है, पाषाणमें सर्वेश्वर महादेवकी कल्पना करना महान् भूल है ब्राह्मण!' कालने श्वेतमुनिको पाशमें बाँध लिया।

'धिक्कार है तुम्हें, परम चिन्मय माहेश्वर लिंगकी शक्तिमत्ताकी निन्दा करनेवाले काल! भगवान् उमापति कण-कणमें व्याप्त हैं। विश्वासपूर्वक आवाहन करनेपर वे भक्तकी रक्षा करते हैं।' श्वेतमुनिने मृत्युकी भर्त्सना की।

x x x x

'ठहरो, श्वेतमुनिकी बात सत्य है, हमारा प्राकट्य विश्वासके ही अधीन है।' यह कहते हुए उमासहित भगवान् चन्द्रशेखर प्रकट हो गये। उनकी जटामें पतितपावनी गंगाका मनोरम रमण था, भुजाओंमें सर्पवलय और वक्षदेशमें साँपोंकी माला थी। भगवान्‌के गौर शरीरपर भस्मका शृंगार ऐसा लगता था मानो हिमालयके धवल शिखरपर श्याम घनका आन्दोलन हो। काल उनके प्रकट होते ही निष्प्राण हो गया। उसकी शक्ति निष्क्रिय हो गयी। श्वेतमुनिने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया। वे भोलानाथकी स्तुति करने लगे।

'आपकी लिंगोपासना धन्य है, भक्तराज! विश्वासकी विजय तो होती ही है।' शिवजीने मुनिकी पीठपर वरद हस्त रख दिया।

नन्दीके आग्रहपर कालको प्राणदान देकर भगवान् मृत्युंजय अन्तर्हित हो गये।

(लिंगपुराण)

~~○~~

# भगवान् नारायणकी सर्वव्यापकता

प्राचीन कालमें अश्वशिरा नामक एक परम धार्मिक राजा थे। उन्होंने अश्वमेधयज्ञके द्वारा भगवान् नारायणका यजन किया था, जिसमें बहुत बड़ी दक्षिणा बाँटी गयी। यज्ञकी समाप्तिपर राजाने अवभृथ-स्नान किया। इसके पश्चात् वे ब्राह्मणोंसे घिरे हुए बैठे थे, उसी समय भगवान् कपिलदेव वहाँ पधारे। उनके साथ योगिराज जैगीषव्य भी थे। उन्हें देखकर महाराज अश्वशिरा बड़ी शीघ्रतासे उठे, अत्यन्त हर्षके साथ उनका सत्कार किया और तत्काल दोनों मुनियोंके विधिवत् स्वागतकी व्यवस्था की। जब दोनों मुनिश्रेष्ठ भलीभाँति पूजित होकर आसनपर विराजमान हो गये, तब महापराक्रमी राजा अश्वशिराने उनकी ओर देखकर पूछा—'आप दोनों अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले और योगके आचार्य हैं। आपने कृपापूर्वक स्वयं अपनी इच्छासे यहाँ आकर मुझे दर्शन दिया है। आप मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणदेवता हैं। आप दोनों मेरे इस संशयका समाधान करें कि मैं भगवान् नारायणकी आराधना कैसे करूँ?'

दोनों ऋषियोंने कहा—'राजन्! तुम नारायण किसे कहते हो? महाराज! हम दो नारायण तो तुम्हारे सामने प्रत्यक्षरूपसे उपस्थित हैं।'

राजा अश्वशिरा बोले—'आप दोनों महानुभाव ब्राह्मण हैं। आपको सिद्धि सुलभ हो चुकी है। तपस्यासे आपके पाप भी नष्ट हो गये हैं—यह मैं मानता हूँ, किंतु 'हम दोनों नारायण हैं', ऐसा आपलोग कैसे कह रहे हैं? भगवान् नारायण तो देवताओंके भी देवता हैं। उनकी भुजाएँ शंख, चक्र और गदासे

अलंकृत रहती हैं। वे पीताम्बर धारण करते हैं। गरुड उनका वाहन है। भला, संसारमें उनकी समानता कौन कर सकता है?'

कपिल और जैगीषव्य—ये दोनों ऋषि कठोर व्रतका पालन करनेवाले थे। वे राजा अश्वशिराकी बात सुनकर हँस पड़े और बोले—'राजन्! तुम विष्णुका दर्शन करो।' इस प्रकार कहकर कपिलजी उसी क्षण स्वयं विष्णु बन गये और जैगीषव्यने गरुडका रूप धारण कर लिया। अब तो राजाओंके समूहमें हाहाकर मच गया। गरुडवाहन सनातन भगवान् नारायणको देखकर महान् यशस्वी राजा अश्वशिरा हाथ जोड़कर कहने लगे—'विप्रवरो! आप दोनों शान्त हों। भगवान् विष्णु ऐसे नहीं हैं। जिनकी नाभिसे उत्पन्न कमलपर प्रकट होकर ब्रह्मा अपने रूपसे विराजते हैं, वह रूप परम प्रभु भगवान् विष्णुका है।'

कपिल एवं जैगीषव्य—ये दोनों मुनियोंमें श्रेष्ठ थे। राजा अश्वशिराकी उक्त बात सुनकर उन्होंने योगमायाका विस्तार कर दिया। फिर तो कपिलदेव पद्मनाभ विष्णुके तथा जैगीषव्य प्रजापति ब्रह्माके रूपमें परिणत हो गये। कमलके ऊपर ब्रह्माजी सुशोभित होने लगे और उनके श्रीविग्रहसे कालाग्निके तुल्य लाल नेत्रोंवाले परम तेजस्वी रुद्रका प्राकट्य हो गया। राजाने सोचा—'हो-न-हो, यह इन योगीश्वरोंकी ही माया है; क्योंकि जगदीश्वर इस प्रकार सहज ही दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। वे सर्वशक्तिसम्पन्न श्रीहरि तो सदा सर्वत्र विराजते हैं।' राजा अश्वशिरा अपनी सभामें इस प्रकार कह ही रहे थे कि उनकी बात समाप्त होते-न-होते खटमल, मच्छर, जूँ, भौंरे, पक्षी, सर्प, घोड़े, गाय, हाथी, बाघ, सिंह, शृगाल, हरिण एवं इनके अतिरिक्त अन्य भी करोड़ों ग्राम्य एवं वन्य-पशु राजभवनमें

चारों ओर दिखायी पड़ने लगे। उस झुंड-के-झुंड प्राणिसमूहको देखकर राजाके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे यह विचार करने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये। इतनेमें ही सारी बात उनकी समझमें आ गयी। अहो! यह तो परम बुद्धिमान् कपिल और जैगीषव्य मुनिका ही माहात्म्य है। फिर तो राजा अश्वशिराने हाथ जोड़कर उन ऋषियोंसे भक्तिपूर्वक पूछा—'विप्रवरो! यह क्या प्रपंच है?'

कपिल और जैगीषव्यने कहा—'राजन्! हम दोनोंसे तुम्हारा प्रश्न था कि भगवान् श्रीहरिकी आराधना एवं उन्हें प्राप्त करनेका क्या विधान है?' महाराज! इसीलिये हमलोगोंने तुम्हें यह दृश्य दिखलाया है। राजन्! सर्वज्ञ भगवान् श्रीहरिकी यह त्रिगुणात्मिका सृष्टि है, जो तुम्हें दृष्टिगोचर हुई है। भगवान् नारायण एक ही हैं। वे अपनी इच्छाके अनुसार अनेक रूप धारण करते रहते हैं। किसी कालमें जब वे अपनी अनन्त तेजोराशिको आत्मसात् करके सौम्यरूपमें सुशोभित होते हैं, तभी मनुष्योंको उनकी झाँकी प्राप्त होती है। अतएव उन नारायणकी अव्यक्त रूपमें आराधना सद्यः फलवती नहीं हो पाती। वे जगत्प्रभु परमात्मा ही सबके शरीरमें विराजमान हैं। भक्तिका उदय होनेपर अपने शरीरमें ही परमात्माका साक्षात्कार हो सकता है। परमात्मा किसी स्थानविशेषमें ही रहते हों, ऐसी बात नहीं है, वे तो सर्वव्यापक हैं। महाराज! इसी निमित्त हम दोनोंके प्रभावसे तुम्हारे सामने यह दृश्य उपस्थित हुआ है। इसका प्रयोजन यह है कि 'भगवान्‌की सर्वव्यापकतापर तुम्हारी आस्था दृढ़ हो जाय। राजन्! इसी प्रकार तुम्हारे इन मन्त्रियों एवं सेवकोंके—सभीके शरीरमें भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं।

राजन्! हमने जो देवता एवं कीट-पशुओंके समूह तुम्हें अभी दिखलाये हैं, वे सब-के-सब विष्णुके ही रूप हैं। केवल अपनी भावनाको दृढ़ करनेकी आवश्यकता है; क्योंकि भगवान् श्रीहरि तो सबमें व्याप्त हैं ही। उनके समान दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसी भावनासे उन श्रीहरिकी सेवा करनी चाहिये। राजन्! इस प्रकार मैंने सच्चे ज्ञानका तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। अब तुम अपनी परिपूर्ण भावनासे भगवान् नारायणका, जो सबके परम गुरु हैं, स्मरण करो। धूप-दीप आदि पूजाकी सामग्रियोंसे ब्राह्मणोंको तथा तर्पणद्वारा पितरोंको तृप्त करो। इस प्रकार ध्यानमें चित्तको समाहित करनेसे भगवान् नारायण शीघ्र ही सुलभ हो जाते हैं।

(वराहपुराण)

# गणेशजीकी उत्पत्तिका प्रसंग और चतुर्थी-तिथिका माहात्म्य

पूर्व समयकी बात है, सम्पूर्ण देवता और तपोधन ऋषिगण जब कार्य आरम्भ करते तो उसमें उन्हें निश्चय ही सिद्धि प्राप्त हो जाती थी। कालान्तरमें ऐसी स्थिति आ गयी कि अच्छे मार्गपर चलनेवाले लोग विघ्नका सामना करते हुए किसी प्रकार कार्यमें सफलता पाने लगे और निकृष्ट कार्यशील व्यक्तिकी कार्य-सिद्धिमें कोई विघ्न नहीं आता था। तब पितरोंसहित सम्पूर्ण देवताओंके मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि 'विघ्न तो असत्-कार्योंमें होना चाहिये, सत्कार्योंमें नहीं, ऐसा क्यों हो रहा है'—इस विषयपर वे परस्पर विचार करने लगे। इस प्रकार मन्त्रणा करते-करते उन देवताओंके मनमें भगवान् शंकरके पास जाकर इस समस्याको सुलझानेकी इच्छा हुई। तब वे कैलास पहुँचे और परम गुरु शंकरको प्रणाम कर विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—'देवाधिदेव महादेव! असुरोंके कार्योंमें ही विघ्न उपस्थित करना आपके लिये उचित है, हमारे कार्योंमें नहीं।'

देवताओंके इस प्रकार कहनेपर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और निर्निमेष दृष्टिसे भगवती उमाको देखने लगे। देवता भी वहीं थे। पार्वतीकी ओर देखते हुए वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अरे! इस आकाशका कोई स्वरूप क्यों नहीं दीखता? पृथ्वी, जल, तेज और वायुकी मूर्ति तो चक्षुगोचर होती है, किंतु आकाशकी मूर्ति क्यों नहीं दीखती।' ऐसा सोचकर ज्ञानशक्तिके भण्डार परमपुरुष भगवान् रुद्र हँस पड़े। अभी हँसी बंद भी नहीं हुई थी कि उनके मुखसे एक परम तेजस्वी कुमार प्रकट हो गया,

वही गणेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसका मुख प्रचण्ड तेजसे चमक रहा था। उस तेजसे दिशाएँ चमकने लगीं। भगवान् शिवके सभी गुण उसमें संनिहित थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो साक्षात् दूसरे रुद्र ही हों। वह महात्मा कुमार प्रकट होकर अपनी सस्मित दृष्टि, अद्भुत कान्ति, दीप्ति मूर्ति तथा रूपके कारण देवताओंके मनको मोहित कर रहा था। उसका रूप बड़ा ही आकर्षक था। भगवती उमा उसे निर्निमेष दृष्टिसे देखने लगीं। उन्हें उसकी ओर टकटकी लगाये देखकर भगवान् रुद्रके मनमें क्रोधका आविर्भाव हो गया। अतः उन परम प्रभुने उस कुमारको शाप देते हुए कहा—'कुमार! तुम्हारा मुख हाथीके मुख-जैसा और पेट लम्बा होगा। सर्प ही तुम्हारे यज्ञोपवीतका काम देंगे—यह नितान्त सत्य है।'

इस प्रकार कुमारको शाप देनेपर भी भगवान् शंकरका रोष शान्त नहीं हुआ। उनका शरीर क्रोधसे काँप रहा था। वे उठकर खड़े हो गये। त्रिशूलधारी रुद्रका शरीर जैसे-जैसे हिलता था, वैसे-वैसे उनके श्रीविग्रहके रोमकूपोंसे तेजोमय जल निकलकर बाहर गिरने लगा। उससे दूसरे अनेक विनायक उत्पन्न हो गये। उन सभीके मुख हाथीके मुख-जैसे थे तथा उनके शरीरकी आभा काले खैर-वृक्ष या अंजनके समान थी। वे हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे।

उस समय उन विनायकोंको देखकर देवताओंकी चिन्ता अत्यधिक बढ़ गयी। पृथ्वीमें क्षोभ उत्पन्न हो गया। तब चतुर्मुख ब्रह्माजी हंसपर विराजमान होकर आकाशमें आये और यों कहे—'देवताओ! तुमलोग धन्य हो। तुम सभी त्रिलोचन एवं अद्भुत रूपधारी भगवान् रुद्रके कृपापात्र हो। साथ ही तुमने असुरोंके कार्यमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले गणेशको प्रणाम करनेका सौभाग्य

प्राप्त किया है।' उनसे इस प्रकार कहनेके पश्चात् ब्रह्माजीने भगवान् रुद्रसे कहा—'विभो! अपने मुखसे प्रकट हुए इस बालकको ही आप इन विनायकोंका स्वामी बना दें। ये विनायक इनके अनुगामी—अनुचर बनकर रहें। प्रभो! साथ ही मेरी प्रार्थना है कि आपके वरके प्रभावसे आकाशको भी शरीरधारी बनकर पृथ्वी आदि चारों महाभूतोंमें रहनेका सुअवसर मिल जाय। इससे एक ही आकाश अनेक प्रकारसे व्यवस्थित हो सकता है।'

इस प्रकार भगवान् रुद्र और ब्रह्माजी बातें कर ही रहे थे कि विनायक वहाँसे चले गये। फिर पितामहने शम्भुसे कहा—'देव! आपके हाथमें अनेक समुचित अस्त्र हैं। अब आप ये अस्त्र तथा वर इस बालकको प्रदान करें, यह मेरी प्रार्थना है।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी वहाँसे चले गये। तब भगवान् शंकरने अपने सुपुत्र गणेशसे कहा—'पुत्र! विनायक, विघ्नहर, गजास्य और भवपुत्र—इन नामोंसे तुम प्रसिद्ध होगे। क्रूरदृष्टिवाले ये विनायक बड़े उग्र स्वभावके हैं। पर ये सब तुम्हारी सेवा करेंगे। प्रकृष्ट यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मके प्रभावसे शक्तिशाली बनकर ये कार्योंमें सिद्धि प्रदान करेंगे। तुम्हें देवताओं, यज्ञों तथा अन्य कार्योंमें भी सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त होगा। सर्वप्रथम पूजा पानेका अधिकार तुम्हारा होगा। यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारे द्वारा उस कार्यकी सफलता बाधित होगी।'

जब ये बातें समाप्त हो गयीं, तब भगवान् शंकरने देवताओंके साथ विभिन्न तीर्थोंके जलसे पूर्ण सुवर्णकलशोंके जलद्वारा गणेशका अभिषेक किया। इस प्रकार जलसे अभिषिक्त होकर विनायकोंके स्वामी भगवान् गणेशकी अद्भुत शोभा होने लगी। उन्हें अभिषिक्त देखकर सभी देवता भगवान् शंकरके सामने ही उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

'गजानन! आपको नमस्कार है। गणनायक! आपको प्रणाम है। विनायक! आपको नमस्कार है। चण्डविक्रम! आपको अभिवादन है। आप विघ्नोंका विनाश करनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। सर्पकी करधनीसे सुशोभित भगवन्! आपको अभिवादन है। आप रुद्रके मुखसे उत्पन्न हुए हैं तथा लम्बे उदरसे सुशोभित हैं, आपको नमस्कार है। हम सभी देवता आपको प्रणाम करते हैं, अतः आप सर्वदा विघ्नोंको शान्त करें।'

जब इस प्रकार भगवान् रुद्रने महापुरुष श्रीगणेशजीका अभिषेक कर दिया और देवताओंद्वारा उनकी स्तुति सम्पन्न हो गयी, तब वे भगवती पार्वतीके पुत्र-रूपमें शोभा पाने लगे। गणाध्यक्ष गणेशजीकी (जन्म एवं अभिषेक आदि) सारी क्रियाएँ चतुर्थी तिथिके दिन ही सम्पन्न हुई थीं। अतएव तभीसे यह तिथि समस्त तिथियोंमें परम श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त हुई। जो भाग्यशाली मानव इस तिथिको तिलोंका आहार कर भक्तिपूर्वक गणपतिकी आराधना करता है, उसपर वे अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। जो व्यक्ति इस कथाका पठन-पाठन अथवा श्रवण करता है, उसके पास विघ्न कभी नहीं फटकते और न उसके पास लेशमात्र पाप ही शेष रह जाता है।

(वराहपुराण)

~~○~~

# दीर्घायुष्य एवं मोक्षके हेतुभूत भगवान् शंकरकी आराधना

प्राचीन कालमें एक राजा थे, जिनका नाम था इन्द्रद्युम्न। वे बड़े दानी, धर्मज्ञ और सामर्थ्यशाली थे। धनार्थियोंको वे सहस्र स्वर्णमुद्राओंसे कम दान नहीं देते थे। उनके राज्यमें सभी एकादशीके दिन उपवास करते थे। गंगाकी बालुका, वर्षाकी धारा और आकाशके तारे कदाचित् गिने जा सकते हैं, पर इन्द्रद्युम्नके पुण्योंकी गणना नहीं हो सकती। इन पुण्योंके प्रतापसे वे सशरीर ब्रह्मलोक चले गये। सौ कल्प बीत जोनपर ब्रह्माजीने उनसे कहा—'राजन्! स्वर्गसाधनमें केवल पुण्य ही कारण नहीं है, अपितु त्रैलोक्यविस्तृत निष्कलंक यश भी अपेक्षित होता है। इधर चिरकालसे तुम्हारा यश क्षीण हो रहा है, उसे पुनः उज्ज्वल करनेके लिये तुम वसुधातलपर जाओ।' ब्रह्माजीके ये शब्द समाप्त भी न हो पाये थे कि राजा इन्द्रद्युम्नने अपनेको पृथ्वीपर पाया। वे अपने निवासस्थान काम्पिल्य नगरमें गये और वहाँके निवासियोंसे अपने सम्बन्धमें पूछ-ताछ करने लगे। उन्होंने कहा—'हमलोग तो उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते। आप किसी वृद्ध चिरायुसे पूछ सकते हैं। सुनते हैं नैमिषारण्यमें सप्तकल्पान्तजीवी मार्कण्डेय मुनि रहते हैं, कृपया आप उन्हींसे इस प्राचीन बातका पता लगाइये।

जब राजाने मार्कण्डेयजीसे प्रणाम करके पूछा कि 'मुने! क्या आप राजा इन्द्रद्युम्नको जानते हैं?' तब उन्होंने कहा—'नहीं, मैं तो नहीं जानता, पर मेरा मित्र नाड़ीजंघबक शायद इसे जानता हो, इसलिये चलो, उससे पूछा जाय।' नाड़ीजंघबकने

अपनी बड़ी विस्तृत कथा सुनायी और साथ ही अपनी असमर्थता प्रकट करने हुए अपनेसे भी अति दीर्घायु प्राकारकर्म उलूकके पास चलनेकी सम्मति दी। पर इसी प्रकार सभी अपनेको असमर्थ बतलाते हुए चिरायु गृध्रराज और मानसरोवरमें रहनेवाले कच्छप मन्थरके पास पहुँचे। मन्थरने इन्द्रद्युम्नको देखते ही पहचान लिया और कहा कि 'आपलोगोंमें जो यह पाँचवाँ राजा इन्द्रद्युम्न है, इसे देखकर मुझे बड़ा भय लगता है; क्योंकि इसीके यज्ञमें मेरी पीठ पृथ्वीकी उष्णतासे जल गयी थी।' अब राजाकी कीर्ति तो प्रतिष्ठित हो गयी, पर उसने क्षयिष्णु स्वर्गमें जाना ठीक न समझा और मोक्ष-साधनकी जिज्ञासा की। एतदर्थ मन्थरने लोमशजीके पास चलना श्रेयस्कर बतलाया। लोमशजीके पास पहुँचकर यथाविधि प्रणामादि करनेके पश्चात् मन्थरने निवेदन किया कि इन्द्रद्युम्न कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।

महर्षि लोमशकी आज्ञा लेनेके पश्चात् इन्द्रद्युम्नने कहा—'महाराज! मेरा प्रथम प्रश्न तो यह है कि आप कभी कुटिया न बनाकर शीत, आतप तथा वृष्टिसे बचनेके लिये केवल एक मुट्ठी तृण ही क्यों लिये रहते हैं?' मुनिने कहा—'राजन्! एक दिन मरना अवश्य है, फिर शरीरका निश्चित नाश जानते हुए भी हम घर किसके लिये बनायें? यौवन, धन तथा जीवन—ये सभी चले जानेवाले हैं। ऐसी दशामें 'दान' ही सर्वोत्तम भवन है।

इन्द्रद्युम्नने पूछा—'मुने! यह आयु आपको दानके परिणाममें मिली है अथवा तपस्याके प्रभावसे? मैं यह जानना चाहता हूँ।' लोमशजीने कहा—'राजन्! मैं पूर्वकालमें एक दरिद्र शूद्र था। एक दिन दोपहरके समय जलके भीतर मैंने एक बहुत बड़ा

शिवलिंग देखा। भूखसे मेरे प्राण सूखे जा रहे थे। उस जलाशयमें स्नान करके मैंने कमलके सुन्दर फूलोंसे उस शिवलिंगका पूजन किया और पुनः मैं आगे चल दिया।' क्षुधातुर होनेके कारण मार्गमें ही मेरी मृत्यु हो गयी। दूसरे जन्ममें मैं ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ। शिव-पूजाके फलस्वरूप मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहने लगा। मैंने जान-बूझकर मूकता धारण कर ली। पितादिकी मृत्यु हो जानेपर सम्बन्धियोंने मुझे निरा गूँगा जानकर सर्वथा त्याग दिया। अब मैं रात-दिन भगवान् शंकरकी आराधना करने लगा। इस प्रकार सौ वर्ष बीत गये। प्रभु चन्द्रशेखरने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मुझे इतनी दीर्घ आयु दी।

यह जानकर इन्द्रद्युम्न, बक, कच्छप, गीध और उलूकने भी लोमशजीसे शिवदीक्षा ली और तप करके मोक्ष प्राप्त किया।

(स्कन्दपुराण)

# भारतके कुमारिकाखण्डकी कथा

ऋषभके पुत्र भरत थे, जिनके नामपर इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा। भरतके पुत्र शतशृंग हुए, उनके आठ पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रोंके नाम इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रद्वीप, गभस्तिमान्, नाग, सौम्य, गन्धर्व और वरुण थे। राजर्षि शतशृंगकी कन्याका मुख बकरीके मुखकी तरह था। ऐसा होनेका कारण उसका पूर्वजन्ममें बकरी-शरीरका होना था। बकरी-शरीरमें वह स्तम्भतीर्थके पास उलझकर मर गयी थी। उसका नीचेका भाग स्तम्भतीर्थ या खम्भार्ककी खाड़ीमें गिर गया था, इस कारण वह दिव्य देहवाली कुमारी बन गयी, किंतु मुखका आधा भाग लताओंमें उलझा हुआ था, अतः उसका मुख बकरीका ही रह गया।

एक दिन उस कुमारीने दर्पणमें अपना मुख देखा। अपना बकरीका-सा मुख देखते ही उसे अपने पूर्वजन्मकी स्मृति हो आयी। उसने अपने माता-पिताको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताकर खम्भार्क-क्षेत्रमें जानेकी आज्ञा ली। वहाँ पहुँचकर उसने अपने पूर्वजन्मके सिरको लताओंमेंसे ढूँढ़ निकाला और उसका खम्भार्कतीर्थमें दाहकर हड्डियोंको पवित्र जलमें डाल दिया। फिर तो उसका मुख चन्द्रमाकी कान्तिके समान दीप्तिमान् हो उठा। इस बातका तीनों लोकोंमें प्रचार हो गया। ऐसा सुनकर देवता, गन्धर्व और राजालोग विवाहके लिये उसके पितासे याचना करनेके हेतु आने लगे, किंतु उस कुमारीने किसीको अपना पति बनाना स्वीकार नहीं किया और वह दुष्कर तपस्यामें लग गयी। जब तपस्या करते हुए एक वर्ष पूरा हो गया, तब आशुतोष भगवान् शंकरने प्रकट होकर उसे अभीष्ट वर देनेको कहा।

राजकुमारी उनका पूजन करके बोली कि 'यदि आप प्रसन्न हैं तो इस तीर्थमें सदा विराजें।' भगवान् शंकर 'एवमस्तु' कहकर उसकी प्रार्थनाको स्वीकार करके चले गये। वहाँके शिव 'बर्करेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुए। जब यह समाचार चारों ओर फैल गया, तब पाताललोकके नागोंका राजा स्वस्तिक उस कुमारीको देखनेके लिये स्तम्भतीर्थमें आया। वह जिस मार्गसे पृथ्वीको विदीर्ण कर बाहर निकला था, वहाँ स्वस्तिक नामक कूप प्रसिद्ध हो गया। वह कूप भगवान् शंकरके ईशानकोणपर स्थित है। उसमें गंगाजीका जल भरा रहता है।

इधर वह कुमारी भगवान् शंकरसे वर प्राप्त कर अपने माता-पिताके पास सिंघलद्वीपमें लौट आयी। राजा शतशृंग अपनी कन्याकी बातोंको सुनकर बहुत विस्मित हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने देशको नौ भागोंमें विभक्त करके आठ भागको क्रमशः आठों पुत्रोंमें बाँट दिया। नवाँ भाग उस लड़कीको दिया। उन नवों खण्डोंके नाम हैं—इन्द्रद्वीपखण्ड, कसेरुखण्ड, ताम्रद्वीपखण्ड, गभस्तिमान्खण्ड, नागखण्ड, सौम्य-खण्ड, गन्धर्वखण्ड, वरुखण्ड और कुमारिकाखण्ड। उनमें सात कुलपर्वत भी हैं, उनके नाम हैं—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र। पारियात्रका दक्षिण भाग कुमारिकाखण्डके नामसे जाना जाता है, जिसकी स्वामिनी वह कुमारी थी। कुमारीका स्वभाव अत्यन्त उदार था। वह अपनी सारी आयको दानमें लगाती हुई तपस्या करने लगी। कुछ समयके बाद कुमारीके आठों भाइयोंके नौ-नौ पुत्र हुए, जो सभी बल, पराक्रम एवं उत्साहसे सम्पन्न थे। एक दिन वे सभी मिलकर उसके पास आये और बोले कि 'तुम हमारी कुलदेवी हो। इस समय हमलोग ७२ (बहत्तर) भाई हो

गये हैं। पर हमारे पास कुल आठ ही खण्ड हैं, अतः तुम कृपा करके आठों खण्डोंको ७२ भागोंमें बाँट दो।' तब कुमारीने उनके बहत्तर भाग किये। इन सभी देशोंके गाँवोंकी संख्या ९६ करोड़, ७२ लाख, ३६ हजार है। इस प्रकार उस कुमारीने समुद्रतकके सभी देशका विभाग करके उन सभी गाँवोंको अपने भतीजोंको दे दिया तथा अपने भागको भी उन्हीं लोगोंको सौंप दिया। यह कुमारिकाखण्ड चारों पुरुषार्थोंको प्रदान करनेवाला है।

बादमें कुमारी गुप्तक्षेत्रमें कुमारेश्वरका पूजन करती हुई भारी तपस्या करने लगी। उसने वहाँ कुमारेश्वरके एक विशाल स्वर्णमय मन्दिरका निर्माण कराया। वहाँ भगवान् शंकर प्रकट हुए। उनकी आज्ञासे उसने महाकालको अपने पतिरूपमें वरण किया और उनके साथ वह रुद्रलोकमें चली गयी। वहाँ पार्वतीजीने उसे हृदयसे लगाया और चित्रलेखा नामसे अपनी सखी बना लिया। उसीने उषाको चित्रद्वारा अनिरुद्धका परिचय दिया था। कहते हैं कि रुद्रका विवाह उसीने कराया था। इस प्रकार यहाँपर मरे हुए मनुष्योंका दाह करना और हड्डियोंको संगमके जलमें डालना प्रयागसे भी अधिक उत्तम बताया गया है।

(स्कन्दपुराण)

# श्राद्धकर्मकी महिमा

प्राचीन कालकी बात है। कुरुक्षेत्रमें कौशिक नामक एक धर्मात्मा ऋषि रहते थे। उनके सात पुत्र थे, जिनके नाम थे—स्वसृप, क्रोधन, हिंस्र, विश्रुत, कवि, वाग्दुष्ट और पितृवर्ती। पिताकी मृत्युके पश्चात् वे महर्षि गर्गके शिष्य हो गये। दैववशात् निरन्तर अनावृष्टिके कारण भीषण अकालका समय उपस्थित हुआ। अकालके कारण जब सातों भाई क्षुधा-शान्तिकी कोई व्यवस्था नहीं कर पाये, तब उनमेंसे एक पितृवर्तीने श्राद्धकर्म करनेकी सम्मति प्रकट की। भाइयोंकी सहमति पाकर उसने समाहित-चित्तसे श्राद्धका उपक्रम किया। उसने छोटे-बड़ेके क्रमसे दो भाइयोंको देवकार्यमें, तीनको पितृकार्यमें, एकको अतिथिकार्यमें नियुक्त किया तथा स्वयं श्राद्धकर्ता बना। कालक्रमानुसार मृत्युके उपरान्त श्राद्धवैगुण्यरूप कर्मदोषसे वे सभी दाशपुर (मन्दसौर) नामक नगरमें बहेलिया होकर उत्पन्न हुए, किंतु श्राद्ध-कृत्यके प्रभावसे उन्हें पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंका स्मरण बना रहा तथा उनके बहेलिया होनेपर भी उनकी वृत्तियाँ उत्तम रहीं। पूर्वजन्मके पुण्यफलसे उनके भीतर वैराग्य उद्दीप्त हुआ और उन्होंने अनशन करके अपने अधम शरीरोंको त्याग दिया। अगले जन्ममें वे कालंजर पर्वतपर भगवान् नीलकण्ठके सम्मुख मृगयोनिमें उत्पन्न हुए। इस योनिमें भी उनके भीतर पूर्वकृत श्राद्धकर्म-पुण्यसे पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही। उस योनिमें भी ज्ञान और वैराग्यके प्रबल अनुरोधसे उन लोगोंने तीर्थस्थानमें अनशन करते हुए धर्मपूर्वक प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। तत्पश्चात् उक्त सातों वेदाभ्यासी जनोंने मानसरोवरमें चक्रवाककी योनिमें

जन्म धारण किया। सुमना, कुमुद, शुद्ध, छिद्रदर्शी, सुनेत्रक, सुनेत्र और अंशुमान् नामोंसे ये सातों योगके पारदर्शी जलचर पक्षी हुए। इनमेंसे अल्पबुद्धिवाले तीन तो योगसे भ्रष्ट होकर इधर-उधर भ्रमण करने लगे और शेष चार उसी मानसरोवरमें शान्तभावसे निवास करते रहे। उसी समय इन पक्षियोंने एक महान् वैभवशाली पांचालनरेशको अपने क्रीडोद्यानमें स्त्रियोंके साथ विहार करते हुए देखा। उस शोभाशाली राजाको देखकर उन जलपक्षियोंमेंसे एकको, जो पितृभक्त, श्राद्धकर्ता पितृवर्ती नामक ब्राह्मण था, राज्यप्रप्तिकी आकांक्षा उत्पन्न हो गयी। दूसरे दो योगभ्रष्ट पक्षियोंको राजाके दो वैभवसम्पन्न मन्त्रियोंको देखकर मृत्युलोकमें मन्त्रिपद पानेकी इच्छा हो गयी। शेष चारों भाई निष्काम थे, अतः वे सभी आगे चलकर श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए, किंतु प्रथम तीन योगभ्रष्ट पक्षियोंमेंसे एक राजा विभ्राजके पुत्ररूपमें ब्रह्मदत्त नामसे उत्पन्न हुआ तथा अन्य दो कंडरीक और सुबालक नामसे मन्त्रीके पुत्र हुए। राजा विभ्राजकी मृत्युके बाद ब्रह्मदत्त महान् गुणवान् राजा हुआ और उसका विवाह संनति नामकी सुन्दरीसे हुआ। पांचालनरेश ब्रह्मदत्त प्रबल पराक्रमी, सभी शास्त्रोंमें प्रवीण, योगज्ञ और सभी जन्तुओंकी बोलीका ज्ञाता था। उसकी पत्नी संनति महान् पतिपरायणा और ब्रह्मवादिनी थी। पवित्र और रमणीय पत्नीके साथ ब्रह्मदत्त सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

एक समयकी बात है, राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी संनतिके साथ भ्रमण करनेके लिये उद्यानमें गया। वहाँ उसने काम-कलहसे व्याकुल एक कीट-दम्पति (चींटा-चींटी)-को देखा। वह चींटा,

जन्म धारण किया। सुमना, कुमुद, शुद्ध, छिद्रदर्शी, सुनेत्रक, सुनेत्र और अंशुमान् नामोंसे ये सातों योगके पारदर्शी जलचर पक्षी हुए। इनमेंसे अल्पबुद्धिवाले तीन तो योगसे भ्रष्ट होकर इधर-उधर भ्रमण करने लगे और शेष चार उसी मानसरोवरमें शान्तभावसे निवास करते रहे। उसी समय इन पक्षियोंने एक महान् वैभवशाली पांचालनरेशको अपने क्रीडोद्यानमें स्त्रियोंके साथ विहार करते हुए देखा। उस शोभाशाली राजाको देखकर उन जलपक्षियोंमेंसे एकको, जो पितृभक्त, श्राद्धकर्ता पितृवर्ती नामक ब्राह्मण था, राज्यप्रप्तिकी आकांक्षा उत्पन्न हो गयी। दूसरे दो योगभ्रष्ट पक्षियोंको राजाके दो वैभवसम्पन्न मन्त्रियोंको देखकर मृत्युलोकमें मन्त्रिपद पानेकी इच्छा हो गयी। शेष चारों भाई निष्काम थे, अतः वे सभी आगे चलकर श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए, किंतु प्रथम तीन योगभ्रष्ट पक्षियोंमेंसे एक राजा विभ्राजके पुत्ररूपमें ब्रह्मदत्त नामसे उत्पन्न हुआ तथा अन्य दो कंडरीक और सुबालक नामसे मन्त्रीके पुत्र हुए। राजा विभ्राजकी मृत्युके बाद ब्रह्मदत्त महान् गुणवान् राजा हुआ और उसका विवाह संनति नामकी सुन्दरीसे हुआ। पांचालनरेश ब्रह्मदत्त प्रबल पराक्रमी, सभी शास्त्रोंमें प्रवीण, योगज्ञ और सभी जन्तुओंकी बोलीका ज्ञाता था। उसकी पत्नी संनति महान् पतिपरायणा और ब्रह्मवादिनी थी। पवित्र और रमणीय पत्नीके साथ ब्रह्मदत्त सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

एक समयकी बात है, राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी संनतिके साथ भ्रमण करनेके लिये उद्यानमें गया। वहाँ उसने काम-कलहसे व्याकुल एक कीट-दम्पति (चींटा-चींटी)-को देखा। वह चींटा,

जिसका शरीर कामदेवके बाणोंसे संतप्त हो रहा था, चींटीसे प्रणयकातर होकर कह रहा था—'प्रिये! इस जगत्में तुम्हारे समान सुन्दरी स्त्री कहीं कोई भी नहीं है। तुम्हारे कटि, वक्ष, उरकी यौवन-शोभा अवर्णनीय है। तुम्हारी वाणी मधुर, मुस्कान वेधक और तुम्हारी रुचियाँ गुड़ और शक्करके प्रति अतिशय स्पृहणीय हैं। तुम्हारा पातिव्रत्य धर्म भी महिमामय है। तुम सदा मेरे भोजन कर लेनेके पश्चात् भोजन करती हो और मेरे स्नान कर लेनेके बाद ही स्नान करती हो। मेरा कुछ ही समयके लिये परदेश चला जाना तुम्हें दीन बना देता है और मेरा किंचित् क्रुद्ध होना भी तुम्हें अतिशय कातर कर देता है। कल्याणि! बतलाओ तो सही किस कारणसे तुमने मान कर रखा है? मुझसे दूर-दूर रहनेका कारण क्या है? चींटेके इन उद्गारोंसे और अधिक आग-बबूला होती हुई चींटी कह रही थी—'रे शठ! तुम क्यों मुझसे व्यर्थ बकवाद कर रहे हो? धूर्त! अभी कल ही तुमने मेरा परित्याग करके लड्डूका चूर्ण ले जाकर दूसरी चींटीको नहीं दिया है?' चींटा कह रहा था—'श्रेष्ठ और मनको भानेवाली मेरी प्रिय भामिनि! तुम मेरे इस एक अपराधको क्षमा कर दो। मैं इसकी पुनरावृत्ति कभी नहीं करूँगा। मैंने तुम्हारे रंगरूपके सादृश्यके कारण भूलसे दूसरी चींटीको मोदकचूर्ण दे दिया था। मैं सत्यकी दुहाई देता हूँ। तुम्हारे चरण छूता हूँ। मुझपर प्रसन्न हो जाओ।'

राजा ब्रह्मदत्त चींटे-चींटीके संवादको सुनकर हँसने लगे। वस्तुतः ब्रह्मदत्तको विभिन्न पशु-पक्षियों एवं प्राणियोंकी बोली समझ जानेका जन्मजात गुण प्राप्त था; क्योंकि उनके पिताने पुत्र-प्राप्तिके लिये महान् तप किया था और भगवान् विष्णुने

ब्रह्मदत्तके रूपमें स्वयं उनके पिताको ब्रह्मदत्त-जैसा पुत्र-प्राप्ति होनेका वरदान दिया था; जो धार्मिक, श्रेष्ठ योगी होनेके साथ-साथ सम्पूर्ण प्राणियोंकी बोलीका ज्ञाता भी हो सकता था। ब्रह्मदत्तको कीट-दम्पतिके बीचमें चलनेवाली प्रणय-लीलाको देखकर जब हँसी आ गयी तो महारानी संनतिने यह समझा कि राजा उनका परिहास कर रहे हैं और उक्त हँसीका रहस्य जाननेके लिये वे हठ करने लगीं। राजाने उन्हें इसका वास्तविक कारण तो बता दिया, पर रानीको उसपर विश्वास नहीं हुआ। राजा रानीको सहमत न कर पानेकी स्थितिमें अत्यन्त दुःखी हो गये और स्वयं श्रीहरिके समक्ष सात राततक आराधना करते हुए बैठे रह गये। भगवान् विष्णुने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'राजन्! प्रातःकाल तुम्हारे नगरमें घूमता हुआ एक वृद्ध ब्राह्मण जो कुछ कहेगा, उसके वचनोंसे तुम्हें सारा रहस्य ज्ञात हो जायगा।' यों कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये।

वास्तविकता यह थी कि सात चक्रवाक जो किसी जन्ममें सात भाई थे, उनमेंसे तीन तो योगभ्रष्ट होकर अपनी इच्छाओंके अनुरूप क्रमशः राजा ब्रह्मदत्त तथा मन्त्री कंडरीक और सुबालक हुए, पर शेष चारों चक्रवाक उसी ब्रह्मदत्तके नगरमें एक वृद्ध ब्राह्मणके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे। वे जातिस्मर बने रहे और धृतिमान्, तत्त्वदर्शी, विद्याचण्ड एवं तपोत्सुक—इन चार नामोंसे लोकमें प्रसिद्ध हो गये थे। बचपनसे ही वैराग्य एवं तपस्याकी प्रवृत्तिके कारण इन चारों भाइयोंने अपने पिता सुदरिद्रसे एक दिन कहा—'पिताजी! हमलोग तपस्या करके परम सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं।' उनके इस कथनको सुनकर महातपस्वी सुदरिद्र दीन वाणीमें बोले—'पुत्रो! यह कैसी बात कर रहे हो? मुझ दरिद्र पिताको छोड़कर तुमलोग वनवासी होना चाहते हो? मेरा

परित्याग करनेसे तुम्हें कौन-सा धर्म होगा और तुम्हारी क्या गति होगी? यह तो महान् अधर्म है।' ऐसा कहकर पिताने उन्हें मना कर दिया। यह सुनकर उन बच्चोंने कहा—'तात! हमलोगोंने आपके जीविकोपार्जनका प्रबन्ध कर दिया है। यदि आप प्रातःकाल राजा ब्रह्मदत्तके समक्ष जाकर इस श्लोकका पाठ कीजिये तो राजा आपको प्रचुर धन-सम्पत्ति एवं सहस्रों ग्राम प्रदान करेंगे। श्लोक यह है—

**ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च।**
**कालञ्जरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे तेऽत्र वसन्ति सिद्धाः॥**

'जो (पहले) कुरुक्षेत्रमें श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें, दाशपुर (मंदसौर)-में व्याधके रूपमें, कालंजर-पर्वतपर मृगयोनिमें और मानसरोवरमें सात चक्रवाकके रूपमें उत्पन्न हुए थे, वे ही सिद्ध (होकर) यहाँ निवास कर रहे हैं।'

तदनन्तर सुदरिद्र ब्राह्मणने वैसा ही किया। ब्राह्मणकी वाणी सुनकर राजा ब्रह्मदत्त अपने दोनों मन्त्रियोंके साथ शोकाकुल होकर भूतलपर गिर पड़े। उन्हें जातिस्मरत्व हो गया। तीनों भाई जो कर्म-बन्धनमें फँसकर योगसे भ्रष्ट हो गये थे, पुनः योगारूढ़ हो गये और उन्हें तत्क्षण वैराग्य हो गया। राजाने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप दिया और योगका आश्रय ग्रहण कर परमपदकी प्राप्ति कर ली।

(मत्स्यपुराण)

# मदनद्वादशीव्रतका अद्‌भुत प्रभाव

एक बार देवताओंद्वारा सम्पूर्ण दैत्यकुलका संहार हो जानेपर दैत्यमाता दितिको अपार कष्ट हुआ। तब वह पृथ्वी-लोकमें स्यमन्तपंचक क्षेत्रमें आकर सरस्वती नदीके तटपर अपने पति महर्षि कश्यपकी आराधना करते हुए भीषण तपमें निरत हो गयी। उसने ऋषियोंकी भाँति फलाहार, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन एवं अनुष्ठान करते हुए और वृद्धावस्थाके कष्टों एवं संततिहीनताके शोकको एक साथ सहन करते हुए सौ वर्षोंतक कठोर तप किया, परंतु उन्हें अभीष्ट सिद्धि नहीं हो सकी। तत्पश्चात् विफलमनोरथा दितिने वसिष्ठ आदि ऋषियोंसे प्रश्न किया—'ऋषियो! आपलोग मुझे ऐसा व्रत बतलाइये, जो पुत्रशोकका विनाशक तथा इहलोक एवं परलोकमें सौभाग्यरूपी फलका प्रदाता हो।'

तब वसिष्ठ आदि ऋषियोंने दितिको मदनद्वादशी-व्रतके विधानका उपदेश किया। उसे सुनकर दितिने उसका अनुष्ठान किया। उन्होंने नियमानुसार चैत्र शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावल, श्वेत पुष्प, श्वेत चन्दन और दो श्वेत वस्त्रोंसे अलंकृत एक छिद्ररहित घटकी स्थापना की। वह घट विविध खाद्य-सामग्री एवं यथाशक्ति सुवर्ण-खण्डसे सुशोभित था। उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल रखे हुए थे। दितिने घटके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र रखा और उसके ऊपर कदलीपत्रपर काम और रतिकी रचना करके गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा की। उस दिन उन्होंने मात्र एक फलका भोजन किया और भूतलपर शयन करते हुए रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल उन्होंने उस घटको ब्राह्मणको दान करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया और स्वयं भी नमकरहित भोजन किया। तदनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस मन्त्रका पाठ किया—

**प्रीयतामत्र भगवान् कामरूपी जनार्दनः।**
**हृदये सर्वभूतानां य आनन्दोऽभिधीयते॥**

इसी प्रकार दितिने प्रत्येक मासमें शुक्लद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान किया। बारह मास बीत जानेके बाद उन्होंने तेरहवें मासमें घृत, धेनु एवं समस्त सामग्रियोंसे युक्त शय्या, रति-कामदेवकी स्वर्ण-प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधार गौका दान किया तथा हवि, खीर और श्वेत तिलोंसे कामदेवके नामोंका उच्चारण करते हुए हवन किया। इस तरह दितिका अनुष्ठान पूर्ण हो जानेपर उसके पति महर्षि कश्यप उसके सम्मुख उपस्थित हो गये। उन्होंने दितिको पुनः रूप-यौवनसम्पन्न युवती बना दिया और उससे मनोवांछित वर माँगनेको कहा। दितिने कहा—'पतिदेव! मैं एक ऐसा पुत्र चाहती हूँ जो इन्द्र एवं समस्त देवताओंका विनाशक हो।'

यह सुनकर महर्षि कश्यपने कहा—'शुभे! मैं तुम्हें अत्यन्त ऊर्जस्वी और इन्द्रका वध करनेवाला पुत्र प्रदान करूँगा, परंतु तुम आज ही आपस्तम्ब ऋषिके द्वारा पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान कराओ। तत्पश्चात् मेरे द्वारा तुम्हें इन्द्रके विनाशक पुत्रकी प्राप्ति होगी।' पतिके कथनानुसार दितिने पुत्रेष्टियज्ञको सम्पादित किया। यज्ञकी समाप्तिके बाद महर्षि कश्यपने दितिके उदरमें गर्भाधान किया और कहा—'वरानने! एक सौ वर्षोंतक तुम इसी तपोवनमें रहती हुई गर्भिणी स्त्रीके लिये उचित सम्पूर्ण नियमोंका पालन करो और गर्भस्थ शिशुकी रक्षा करो।' ऐसा कहकर महर्षि कश्यप अन्तर्धान हो गये। दिति पतिके कथनानुसार नियमोंका पालन करती हुई उसी तपोवनमें समय व्यतीत करने लगी। इस वृत्तान्तको जानकर इन्द्र देवलोकसे दितिके पास आये और दितिकी सेवा करनेकी इच्छा करते हुए उसके पास ही रहने लगे। बाह्यरूपसे विनम्र एवं प्रशान्त प्रतीत होनेवाले इन्द्रकी एकमात्र इच्छा थी कि

किसी भी प्रकारसे सौ वर्षके पूर्ण होनेके पूर्व ही यह गर्भ नष्ट हो जाय। इसलिये वे सदैव दितिके छिद्रान्वेषणमें तत्पर रहते थे।

जब सौ वर्षकी अवधिके पूर्ण होनेमें केवल तीन दिन शेष रह गये तो दिति अपने-आपको सफलमनोरथ समझते हुए निद्राके प्रभावसे दिनमें ही पैतानेकी ओर सिर कर सो गयी। ऐसा अवसर पाकर इन्द्रने दितिके उदरमें प्रवेश किया और वज्रके प्रहारसे गर्भके सात टुकड़े कर दिये। उन सात टुकड़ोंसे सूर्यके समान तेजस्वी सात शिशु उत्पन्न हो गये और रोने लगे। इन्द्रके मना करनेपर भी जब शिशुओंने रोना बंद नहीं किया, तब उन्होंने पुनः वज्रके प्रहारसे एक-एक शिशुके सात-सात टुकड़े कर दिये। इस प्रकार वे टुकड़े उनचास शिशुओंके रूपमें परिणत होकर जोर-जोरसे रोने लगे। इन्द्रके बार-बार **'मा रुदत'** मत रोओ कहनेपर भी उनका रुदन बंद नहीं हुआ। इन्द्रको महान् आश्चर्य हुआ कि वज्रप्रहारके बाद भी शिशुओंके जीवित रहनेका क्या कारण है? अन्ततः ध्यानके द्वारा उन्हें यह ज्ञात हुआ कि दितिके द्वारा किये गये मदनद्वादशी-व्रतके प्रभावसे ही ये बालक अमर हो चुके हैं और उदरमें रहते हुए ही उनकी संख्या उनचास हो गयी है। यह सोचकर इन्द्र दितिके उदरसे बाहर निकल आये। उन्होंने अपने कृत्यके लिये दितिसे क्षमा माँगी और दितिके गर्भमें स्थित उनचास शिशुओंको मरुद्गणकी संज्ञा देते हुए उन्हें देवताओंके समान बताया तथा यज्ञोंमें उनके लिये उचित भागकी व्यवस्था की।

फिर ये दितिके पुत्रोंको विमानमें बैठाकर अपने साथ स्वर्ग ले गये। इस व्रतके अनुष्ठानसे कर्ताके सम्पूर्ण मनोरथ सफलीभूत हो जाते हैं और असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

(मत्स्यपुराण)

~~○~~

# नागपंचमी-व्रत-माहात्म्य

एक बार महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे नागपंचमी-व्रतके विषयमें जिज्ञासा व्यक्त की, तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'युधिष्ठिर! दयिता-पंचमी नागोंके आनन्दको बढ़ानेवाली होती है। श्रावणशुक्ला पंचमीमें नागोंका महान् उत्सव होता है। उस दिन वासुकि, तक्षक, कालिक, मणिभद्रक, धृतराष्ट्र, रैवत, कर्कोटक और धनंजय—ये सभी नाग प्राणियोंको अभय (दान) देते हैं। जो मनुष्य नागपंचमीके दिन नागोंको दूधसे स्नान कराते हैं, दूध पिलाते हैं। उनके कुलमें प्राणियोंको ये सदा अभयदान देते रहते हैं। जब नागमाता कद्रूने नागोंको शाप दे दिया, तब वे रात-दिन संतप्त हो रहे थे। जब उन्हें गायके दूधसे तृप्त किया गया तबसे वे प्रसन्न होकर सुखी हो गये।'

युधिष्ठिरने पूछा—'जनार्दन! माता कद्रूने नागोंको क्यों शाप दिया? उस शापका निराकरण कैसे हुआ?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अश्वोंका राजा उच्चैःश्रवा अमृतसे उत्पन्न हुआ था, वह श्वेत वर्णका था।' उसे देखकर नागमाता कद्रूने अपनी बहन विनतासे कहा—'देखो, देखो अमृतसे उत्पन्न यह अश्वरत्न श्वेत है, पर आज इसके सभी श्वेत बाल काले दिखायी पड़ते हैं। तुम देखती हो या नहीं?' विनता बोली—'इस श्रेष्ठ घोड़ेका सर्वांग श्वेत है, न काला है न लाल। कैसे तुम्हें काला दिखायी पड़ता है?'

कद्रू बोली—'विनता! मैं एक आँखवाली इसे काले बालोंवाला देखती हूँ, परंतु तू दो आँखोंवाली होकर भी नहीं देखती? कुछ शर्त रखो।' विनताने कहा—'कद्रू! यदि तुम इसके काले केश दिखा दोगी तो मैं तुम्हारी दासी हो जाऊँगी। यदि तुम काले केश नहीं दिखा पाओगी तो तुम मेरी दासी होगी।' इस प्रकार शर्त

(प्रण) कर वे दोनों क्रुद्ध होकर चली गयीं। रात्रिमें सबके सो जानेपर कद्रूने कुटिलता सोची। उसने अपने पुत्रों—काले नागोंको बुलाकर कहा कि 'तुमलोग उच्चैःश्रवाके बाल बनकर उससे चिपक जाओ, जिससे मैं बाजी जीत जाऊँ—विनताको दासी बना लूँ।' तब उन नागोंने माताकी कुटिलतापर उसे फटकारा कि यह महान् पाप है। हम तुम्हारा कहा नहीं करेंगे। तब कद्रूने क्रुद्ध हो उन्हें शाप दे दिया—'जाओ, तुम्हें अग्नि जला देगी। बहुत दिनोंके बाद पाण्डववंशी राजा जनमेजय विकराल सर्पयज्ञ करेंगे। उस यज्ञमें प्रचण्ड पावक तुम्हें जला देगा।' ऐसा शाप देकर कद्रू चुप हो गयी।

माताके द्वारा अभिशप्त सर्पोंको कुछ सूझा ही नहीं। वासुकि नाग दुःखसे संतप्त हो मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा। उसे दुःखी देख ब्रह्माजी सहसा वहाँ आ पहुँचे और सान्त्वना देते हुए बोले—'वासुकि! शोक मत करो। मेरी बात सुनो। यायावरवंशमें जरत्कारु नामक द्विज उत्पन्न हुए हैं। आगे चलकर वे बड़े तेजस्वी तपोनिधि होंगे। उन्हें तुम अपनी बहन विवाह दो। उससे आस्तीक नामक विख्यात पुत्र होगा। वह नागोंके विनाशकारी उस नागयज्ञको राजाको समझा-बुझाकर रोक देगा।'

ब्रह्माजीकी बात सुनकर प्रसन्न वासुकिने वैसा ही किया। नागोंको इससे अभयदान मिला। वे इससे परम प्रसन्न हुए कि उनका वंशधर आस्तीक हम नागोंका विनाश रोक देगा। ब्रह्माजीने उनसे कहा—'आस्तीकद्वारा तुमलोगोंका यह भय-निवारण (श्रावण-शुक्ल) पंचमीको होगा।' इसलिये युधिष्ठिर! यह पंचमी शुभादयिता कही जाती है तथा नागोंको आनन्द देनेवाली है। इस तिथिको ब्राह्मणोंको भोजन कराकर नागोंकी इस प्रकार पूजा-प्रार्थना करनी चाहिये—'भूतलपर जो नाग हैं, वे प्रसन्न हों। जो नाग हिमालयपर

रहते हैं, जो आकाशमें हैं, जो देवलोकमें हैं, जो नदियों-सरोवरोंमें हैं और जो बावली-तालाबोंमें है, उन सबको नमस्कार है।' ऐसा कहकर नागों और विप्रोंकी यथायोग्य पूजा कर उनका विसर्जन करें। तत्पश्चात् सेवकों और परिजनोंसहित स्वयं भोजन करे। पहले मधुर पदार्थ खायँ, पीछे अन्य भोज्य पदार्थ स्वेच्छासे ग्रहण करें। इस प्रकार व्रत-नियम करनेवाला मरनेके बाद नागलोकको जाता है, वहाँ अप्सराएँ उसकी पूजा करती हैं और वह श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो अभीष्ट कालतक विहार करता है। वहाँसे पुनः इस भूतलपर जन्म लेनेपर वह राजाधिराज होता है। उसके पास सभी रत्नोंका भण्डार होता है, सवारियाँ होती हैं, सम्पत्ति होती है। वह पाँच जन्मोंतक निरन्तर राजा होता है। उस अवधिमें वह आधि-व्याधिसे मुक्त रहता है। पत्नी और पुत्र, उसके सहायक—अनुकूल होते हैं। इसलिये नागोंकी घी-दूध आदिसे सदा पूजा करनी चाहिये।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—'भगवन्! क्रुद्ध नाग जिस व्यक्तिको डँस लेते हैं, उसका क्या होता है?' भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! नागके डँसनेसे मृत्युको प्राप्त व्यक्ति अधोलोकमें गिरता है। वहाँ वह विषहीन सर्प होता है।' युधिष्ठिरने पुनः पूछा—'साँपके काटनेसे जिसके पिता-माता, भाई-मित्र, पुत्र, बहन, कन्या या स्त्री—कोई भी सम्बन्धीजन मर जाते हैं, उनके उद्धारके लिये उसे क्या दान-व्रत-उपवास करना चाहिये, जिससे वे स्वर्गको प्राप्त हों।' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजन्! उन्हें नागोंको प्रसन्न करनेवाली पंचमीका व्रत एक वर्षतक करना चाहिये। उसका विधान सुनिये—भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी पंचमी अधिक पुण्यकारक है। सद्गतिकी कामनासे उसे ग्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार एक वर्षमें बारह पंचमियाँ होती हैं। व्रतके पूर्व दिन चतुर्थीको रात्रिमें एक अन्न ग्रहण करना चाहिये। दूसरे दिन पंचमीको नागकी पूजा करनी चाहिये। सोने या चाँदी या लकड़ी अथवा मिट्टीका पाँच फनोंका नाग बनवाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करें। उन्हें करवीरके फूल, कमलके फूल, सुन्दर जाती-पुष्प, चन्दन, नैवेद्य आदि समर्पित कर पूजा करें। पूजाके पश्चात् ब्राह्मणको भोजन करायें। ब्राह्मण-भोजनमें घी-खीर-मोदककी प्रधानता होनी चाहिये। सर्पके काटनेसे मरे हुए प्राणीके लिये नारायण-बलि करें। दान और पिण्ड-दानमें ब्राह्मणोंको तृप्त करना चाहिये। एक वर्ष पूर्ण होनेपर वृषोत्सर्ग करना चाहिये। स्नानकर जलदान करें—'यहाँ श्रीकृष्ण प्रसन्न हों'—यह प्रार्थना करे। प्रत्येक मासमें अनन्त, वासुकि, शेष, पद्म, कम्बल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक तथा पिंगल नामक महानागोंका नामोच्चारण करना चाहिये। वर्षकी समाप्तिपर पारणके समय ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इतिहास-वेत्ता (विद्वान्) विप्रको स्वर्णका नाग तथा सवत्सा सीधी गौ, काँसेकी दोहनी (दुग्ध दूहनेका पात्र) सहित देनी चाहिये।

विद्वानोंने यह पारण-विधि बतायी है। इस श्रेष्ठ व्रतके करनेसे बान्धवोंको सद्गतिकी प्राप्ति होती है। सर्पादिके काटनेसे जिनकी अधोगति हो जाती है, उनके निमित्त यदि एक वर्षतक यह उत्तम व्रत भक्तिपूर्वक किया जाय तो वे जीव उस यातनासे मुक्त होकर शुभगतिको प्राप्त होते हैं। जो भक्तिपूर्वक नित्य इस आख्यानको पढ़ता या सुनता है, उसके कुटुम्बमें नागोंसे कोई भय नहीं होता। इसी प्रकार जो भाद्रपदशुक्ला पंचमीको काले रंगोंसे नागोंका चित्र बनाकर गन्ध-पुष्प-घी-

गुग्गुल-खीर आदिसे भक्तिपूर्वक पूजा करता है, उसपर तक्षक आदि नाग प्रसन्न होते हैं। उसके सात कुल (पीढ़ी) तक नागोंसे भय नहीं रहता। इसी प्रकार आश्विनमासकी शुक्ला पंचमीको कुशके नाग बनाकर इन्द्राणीके साथ उनकी पूजा करे। घी-दूध और जलसे स्नान कराकर दूधमें पके गेहूँ तथा अन्य भोज्य पदार्थ उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक समर्पित करे तो शेष आदि नाग उसपर प्रसन्न होते हैं, उसे सुख-शान्ति प्राप्त होती है। मृत्युके बाद वह प्राणी उत्तम लोकको प्राप्त करता है, जहाँ चिरकालतक आनन्द भोगता है। यह पंचमीव्रतका विधान है। सर्पोंका सर्वदोष-निवारक मन्त्र यह है—'**ॐ कुरुकुल्ले हुं फट् स्वाहा।**' इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक सौ पंचमियोंको जो सर्पोंकी पूजा पुष्पोंसे करते हैं, उनके घरमें साँपोंका कभी भय नहीं होता।

(भविष्यपुराण)

## नृपश्रेष्ठ वरेण्यपर भगवान् गजाननकी कृपा

प्रचीन कालमें माहिष्मती नामकी एक श्रेष्ठ नगरी थी, जो नृपश्रेष्ठ वरेण्यकी राजधानी थी। महाराज वरेण्य परम धर्मपरायण थे। ऐसा लगता था कि मानो मूर्तिमान् धर्मने ही उनके रूपमें अवतार ग्रहण किया हो। वे बड़ी तत्परतासे प्रजाका पालन करते थे। उन्हींकी भाँति उनकी पत्नी महारानी पुष्पिका भी परम गुणवती, पतिव्रता एवं सदाचारिणी थी। पूर्वजन्ममें ये दम्पति भगवान् गणेशके परम भक्त थे। दोनोंने बारह वर्षतक गणपतिकी आराधना करके उनका परम अनुग्रह प्राप्त किया था। भगवान् गणेशने उन्हें अनुग्रहपूर्वक वरदान दिया था कि 'तुमलोगोंके भावी जन्ममें मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।'

x x x x

इन्द्रप्रभृति देवगण दैत्य सिन्दूरासुरके अत्याचारसे भयाक्रान्त थे, अतः वे सुरगुरु बृहस्पतिकी आज्ञासे भगवान् गणेशके पास गये और उनसे प्रार्थना करते हुए बोले—'जगत्का संहार करनेवाले इस सिन्दूरासुरका निर्माण किसने किया है? आप-जैसे स्वामीके जागरूक रहते हुए उस असुरने सम्पूर्ण विश्वको संकटमें डाल दिया है। इस दशामें हम आपको छोड़कर और किसकी शरणमें जायँ? कौन हम सबका पालन करेगा? अतः आप ही भगवान् शिवके घरमें अवतीर्ण होकर इस दृष्टबुद्धि असुरका संहार कीजिये।'

देवताओं एवं ऋषियोंके इस प्रकार स्तुति एवं आराधना करनेसे कृपालु भगवान् गणेश प्रसन्न हो गये और उन्होंने सबको अभय करनेका आश्वासन दिया।

भगवती जगदम्बा पार्वतीके गर्भसे भगवान् गणेशने चतुर्बाहु-रक्तवर्ण-गजाननके रूपमें इस पृथ्वीपर अवतार लिया। करुणानिधान गजानन नृपश्रेष्ठ वरेण्यको दिये वचन भूले न थे। उनकी योगमाया-शक्तिने सब योजना पूर्ववत् बना रखी थी। भगवान् गजाननके प्राकट्यके समय ही महारानी पुष्पिकाने एक बालकको जन्म दिया था। प्रसवके समय वह मूर्च्छित हो गयी और उस बालकको एक क्रूर राक्षसी उठा ले गयी। ठीक उसी समय शिवगण नन्दीने भगवान् बाल गजाननको मूर्च्छिता रानी पुष्पिकाके पास पहुँचा दिया। भगवान् गजाननके माता-पिता गौरी-शंकरको अपने पुत्रके वरदान देनेकी जानकारी थी ही, अतः उसका सुरक्षितरूपसे रानी पुष्पिकाके पास पहुँचना उनके लिये आनन्दका विषय ही था।

मूर्च्छा टूटनेपर रानी पुष्पिकाने अपने पास अद्भुत बालकको देखा। उस गजमुख-चतुर्बाहु-रक्तवर्ण बालकके सभी चिह्नोंने माताको चकित ही नहीं, भयभीत भी कर दिया। भयवश रानी रोने लगी। रानीका रुदन सुनते ही परिचारिकाएँ आदि एकत्र हो गयीं। भगवान्‌की मायाशक्तिने वहाँ एकत्रित सभी लोगोंपर मायाका पर्दा डाल दिया, जिससे परात्पर परब्रह्म भगवान् गजाननको कोई पहचान न सका। सभीने कहा—'ऐसा बालक होना बड़ा अशुभ है।' राजा वरेण्यके पास भी तुरंत यह सूचना गयी और वरेण्यपर भी मायाका पर्दा पड़ गया। राजाने अशुभकी आशङ्कासे उस बालकको निर्जन वनमें फेंकवा दिया। वहाँ भगवान् गजाननकी कृपाशक्तिने महर्षि पराशपर कृपा की, जिसके प्रभावसे उन्होंने निर्जन वनमें पड़े परात्पर परब्रह्म बालक गजाननको उनके शुभ

अनुभव करते हुए महर्षि उस बालकको अपने आश्रममें ले आये और उसे अपनी पत्नी वत्सलाको सौंप दिया। महर्षिपत्नी वत्सलाके आनन्दका पार न था। वह मातृ-स्नेहसे शिशुके पालनमें लग गयी। साक्षात् भगवान्‌के निवाससे महर्षिके आश्रमकी शोभा निराली हो गयी। सभी वृक्ष नवपल्लव, फल, पुष्पादिसे सुशोभित हो गये।

बालरूप भगवान् गणेशने अनेक प्रकारकी बाल-लीलाएँ करते हुए नवें वर्षमें प्रवेश किया। परम अनुग्रहमूर्ति भगवान् गजानन देवताओंकी प्रार्थनाको भूले न थे। उन्हें दैत्यराज सिन्दूरासुरका उद्धार करके देवताओं एवं ऋषि-मुनियोंको भय-मुक्त करना था। अतः उन्होंने अपना शौर्यरूप प्रकट करके सिन्दूरवाड़में जाकर दैत्यराज सिन्दूरका वध किया, जिससे इन्द्रादि देवताओंके हर्षकी सीमा न रही। भगवान् गजाननकी इस अद्‌भुत कृपाका स्मरण कर स्वाभाविक ही उनके मुखसे ये वचन निकल पड़े—

'भगवन्! आप नाना प्रकारके अवतार लेकर विशेषरूपसे जगत्‌का पालन करते हैं एवं दुष्टोंका विनाश करके भक्तोंकी कामनाओंको तत्काल पूर्ण करते हैं।'

राजा वरेण्यसे भी अपने बालक गजाननकी लीलाएँ छिपी न रहीं। अपने बालकका महर्षि पराशरद्वारा पालन-पोषण एवं सिन्दूर-उद्धार आदि सभी कृपामयी लीलाएँ सुनकर राजा वरेण्य हर्ष एवं पश्चात्तापके सागरमें गोते लगा रहे थे। अन्तमें भगवान् गजाननकी कृपासे मायाका परदा हटते ही उन्होंने बालकको पहचान लिया। फिर तो वे शीघ्रतापूर्वक भगवान् गजाननके पास पहुँचकर अत्यन्त दीनभावसे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! मैं

अज्ञानी आपकी कृपाको समझ न सका। भला, मेरे-जैसा अज्ञानी पुरुष आपके स्वरूपको कैसे पहचान पाता। कृपानिधान! आप मुझे क्षमा करें। मायासे मोहित होकर मैंने महान् अनर्थ कर डाला।'

करुणामूर्ति गजानन पिता वरेण्यकी प्रार्थना सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने राजाको कृपापूर्वक अपने पूर्वजन्मके वरदानका स्मरण कराया।

x x x x

भगवान् गजाननने पिता वरेण्यसे अपने स्वधाम-यात्राकी आज्ञा माँगी। स्वधाम-गमनकी बात सुनकर राजा वरेण्य व्याकुल हो उठे और अश्रुपूर्ण नेत्र एवं अत्यन्त दीनतासे प्रार्थना करते हुए बोले—'कृपामय! मेरा अज्ञान दूरकर मुझे मुक्तिका मार्ग प्रदान करें।'

राजा वरेण्यकी दीनतासे प्रसन्न होकर भगवान् गजाननने उन्हें ज्ञानोपदेश प्रदान किया। यही अमृतोपदेश गणेश-गीताके नामसे विख्यात है।

(गणेशपुराण)

# भगवान् श्रीरामका एकाम्रक्षेत्रीय अश्वमेध-यज्ञ

एक बार भगवान् श्रीरामने आयोध्याकी राजसभामें उपस्थित वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप आदि श्रेष्ठ ऋषियोंसे प्रश्न किया कि 'इस विश्वमें सर्वश्रेष्ठ एवं मोक्षदायक पवित्र तीर्थ कौन है, जिसका दर्शन करनेसे मनुष्य अपने पाप-राशिका क्षय और धर्म प्राप्त करता है।' इसपर वसिष्ठजीने कहा—'एकाम्रक्षेत्र (भुवनेश्वर) सभी स्थानोंमें श्रेष्ठ है, जहाँ भगवान् शिव स्वयं ही लिंगरूपमें निवास करते हैं।' यह सुनकर भगवान् राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने भाइयों, ऋषियों तथा सीताके साथ चतुरंगिणी सेना लेकर एकाम्रक्षेत्रमें गये। वहाँ उन्होंने सीताजीके साथ कृत्तिवासेश्वर लिङ्गराजका विधिवत् दर्शन-पूजन किया। याचकों तथा द्विजोंको दान देकर संतुष्ट किया और एक वर्षतक निवास कर एक दिव्य मन्दिरका निर्माण कराया। इस बीच वे प्रतिदिन पवित्र विन्दुसरमें स्नान करके वेद-वर्णित विधिके द्वारा गौ, द्विज और ऋषियोंका सम्मान करते हुए धर्मपूर्ण जीवन व्यतीत करते रहे।

एक बार जब भगवान् श्रीराम ऋषियोंके साथ धर्मचर्चामें लीन थे, तभी आकाशवाणी हुई—'हे राजन्! इस पवित्र शिव-स्थानमें तुम अश्वमेध यज्ञ करो, इससे तुम्हारी कीर्ति सदैव संसारमें स्थिर रहेगी।' वसिष्ठ आदि ऋषियोंके अनुमोदनपर श्रीरामने शुभ मुहूर्तमें विद्वान् ऋत्विजोंकी अनुमतिसे एकाम्रक्षेत्रमें अश्वमेध यज्ञका शुभारम्भ किया। मन्त्रद्वारा समस्त लक्षणयुक्त यज्ञीय अश्व दिग्विजयके लिये छोड़ा गया। चतुरंगिणी सेनाके साथ श्रीशत्रुघ्नजी उस यज्ञीय अश्वके रक्षक बने। यज्ञ-कार्यमें दीक्षित श्रीरामजीने देवताओं तथा ऋषियोंका आशीर्वाद ग्रहण करते हुए समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त उस अश्वको मन्त्रपाठ करते हुए जानेकी अनुमति प्रदान की।

उस घोड़ेके साथ चलते हुए ससैन्य श्रीशत्रुघ्नजी अनेक नदी-नद-सरोवर, वन एवं प्रदेशोंको पार करते हुए श्रीशैल नामक स्थानपर जा पहुँचे। जहाँ कज्जलगिरि-सा काला, रामका नित्यद्वेषी दुरात्मा कमठांग असुर निवास करता था। उसने श्रीरामके यज्ञीय अश्वका हरण करके उसे लताओंसे आच्छादित एक पर्वतकी कन्दरामें छिपा दिया। जब श्रीशत्रुघ्न आदि वीरोंने यज्ञके घोड़ेको नहीं देखा, तब वे बड़े चिन्तित हुए और चारों दिशाओंमें घोड़ेकी खोज करने लगे। रात्रिभर किसी प्रकार चित्रावली नदीके किनारे चिन्तामग्न उन वीरोंको प्रत्येक क्षण कल्पके समान बीता। अश्वकी रक्षा कर पानेमें असमर्थ श्रीशत्रुघ्न आदि वीरोंने अपने मरणको ही उचित समझा। इसी बीच देवर्षि नारद वीणा बजाते हुए वहाँ आ पहुँचे। सारी स्थिति जानकर उन्होंने श्रीशत्रुघ्नसे कहा—'आपके अश्वका अपहरण विकट राक्षसके भ्राता कमठने किया है। उसने उसे श्रीशैलके पास प्लक्ष वनमें छिपा दिया है। उस पापीका वधकर आप अपने अश्वको प्राप्त कर सकेंगे।'

देवर्षि नारदकी बातसे श्रीशत्रुघ्न प्रसन्न होकर कमठ राक्षसका वध करनेके लिये अपनी सेनाके साथ प्राची वेत्रवती नदीके किनारे जा पहुँचे। इधर देवर्षि नारद श्रीशैलपर स्थित असुरराज कमठांगके महलमें पहुँच गये और उसे यह सूचना दी कि यज्ञीप अश्वको मुक्त करानेके लिये रामानुज शत्रुघ्न अपनी विशाल सेनाके साथ आ रहे हैं और उनके द्वारा तुम्हारा वध होगा। तब कमठने कहा—'मुने! राम हों या रामका भाई हो या कोई अन्य हो, मैं युद्धमें सम्मुख इन्द्रसे भी नहीं डरता, सामान्य मनुष्योंकी क्या स्थिति है। मैं अश्वमेधका घोड़ा कभी न दूँगा।' यह कहकर वह भी अपनी सेना सजाकर युद्धके लिये चल पड़ा। दोनों ओरसे भयानक युद्ध

छिड़ गया। अनेक हाथी, घोड़े, सारथि आदि देवासुर-संग्रामकी तरह उस युद्धमें कट-कटकर गिरने लगे। रक्तकी नदी बह चली। वीरवर श्रीशत्रुघ्नकी बाण-वर्षासे पीड़ित होकर कमठकी सेना भाग चली। कमठके कहनेपर उसके सारथिने रथको शत्रुघ्नके सामने खड़ा किया। उन दोनों योद्धाओंका द्वन्द्व युद्ध देखनेके लिये सम्पूर्ण देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग आदि आकाशमें स्थित हो गये। कमठके द्वारा छोड़े गये पिशाचास्त्रको श्रीशत्रुघ्नने गन्धर्वास्त्रसे काट गिराया। इससे सभी दानव भयभीत होकर भाग चले। कमठने अपनी भागती हुई सेनाको लौटाया और तिमिरास्त्रका प्रयोग किया। इससे दसों दिशाओंमें इतना अन्धकार छा गया कि किसीको अपना हाथतक नहीं दिखायी पड़ता था। तत्पश्चात् शत्रुघ्नने सूर्यास्त्र चलाकर उस अन्धकारको दूर करते हुए अष्टशूलमय तीक्ष्ण बाणसे उसके रथके चारों घोड़ों और सारथिको मार डाला। इसपर वह क्रूरकर्मा राक्षस वृक्ष लेकर शत्रुघ्नपर झपट पड़ा। तब श्रीशत्रुघ्नजीने अर्धचन्द्रास्त्रसे उसका मस्तक काट गिराया कमठकी मृत्युसे प्रसन्न होकर देवोंने शत्रुघ्नजीकी स्तुति करते हुए उनपर पुष्पवृष्टि की। इसके पश्चात् शत्रुघ्नजी यज्ञका घोड़ा लेकर भुवनेश्वर लौट आये।

यज्ञीय अश्व प्राप्त कर भगवान् श्रीरामने विधिवत् अपना अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण किया। इस यज्ञके किये जानेसे भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे भगवान् श्रीरामकी प्रार्थनापर एकाम्रक्षेत्रमें रामेश्वररूपसे प्रतिष्ठित हुए। इस रामेश्वर-तीर्थमें शिवोपासना करनेसे ऋद्धि, सिद्धि, स्वर्गसुख, क्षेम, आरोग्य एवं समस्त ऐश्वर्य व्यक्तिको उपलब्ध होते हैं।

(एकाम्रपुराण)

~~○~~

# सक्तुप्रस्थीय मौद्गल्योपाख्यान

महर्षि मुद्गल प्राचीन वैदिक ऋषि थे। वे ऋग्वेदके दशम मण्डलके १०२वें सूक्तके द्रष्टा ऋषि थे। गौतमपत्नी अहल्या और शतानन्द इन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए थे। महर्षि मुद्गल ऋग्वेदकी मुख्य शाखा—शाकल्यसंहिताके द्रष्टा महर्षि शाकल्यके पाँच शिष्योंमेंसे सर्वप्रथम थे। इनकी पत्नी इन्द्रसेना या मुद्गलानी कही गयी हैं। इनका दिव्य, आदर्शमय एवं कल्याणकारी जीवनवृत्त बृहद्देवता आदि वैदिक ग्रन्थोंके अतिरिक्त प्रायः सभी इतिहास-पुराणोंमें आया है। ये पाँच भाई थे और इन्हींके कारण पांचालप्रदेश विख्यात हुआ। गणेश-उपासनापरक मुद्गलपुराणके यही वक्ता हैं। इसी कारण इसे 'मुद्गलपुराण' कहा जाता है।

महर्षि मुद्गल पांचालदेशके प्रसिद्ध तीर्थ कुरुक्षेत्रमें रहते थे। ये महान् दानी, धर्मात्मा, तपस्वी, जितेन्द्रिय, भगवद्भक्त एवं सत्यवक्ता थे और देवता, अतिथि, गौ, ब्राह्मण तथा संत-महात्माओंके परमभक्त थे। ये शिलोञ्छवृत्तिसे सपरिवार अपना जीवन-निर्वाह करते थे। प्रत्येक पंद्रह दिनोंमें एक द्रोण धान्य, जो लगभग ३४ सेरके बराबर होता है, इकट्ठा कर लेते थे। उसीसे पार्वायणान्तीय इष्टियोंका सम्पादन करते अर्थात् प्रत्येक पंद्रहवें दिन अमावास्या एवं पूर्णिमाको दर्शपौर्णमास याग एवं अयनोंमें आग्रायण-यज्ञ किया करते थे। उन्होंने सपरिवार तीन-तीन दिनके बाद भोजन करनेका कठिन व्रत लिया था। यदि किसी दिन उस समय भोजन न मिला तो तीन दिनतक सपरिवार भूखे रहकर तप करते थे, किंतु इनके यहाँ आकर कोई भी याचक दुःखी नहीं लौटता था। यज्ञोंमें देवता और अतिथियोंको देनेसे जो अन्न

बचता, उसीसे ये अपने परिवारका निर्वाह करते थे। जैसे धर्मात्मा ब्राह्मण स्वयं थे, वैसे ही उनकी धर्मपत्नी और संतान भी थी। मुनिवृत्तिसे रहना और प्रसन्नचित्तसे अतिथियोंको अन्नादिका दान देना, यही उनके जीवनका व्रत था।

एक समयकी बात है, कुरुक्षेत्रमें बड़ा भीषण अकाल पड़ा। कई दिन बीत गये, पर इस ब्राह्मण-परिवारको अन्नके दर्शन तक न हुए। खेतोंका अन्न भी सूख गया था। अत्यन्त कष्टपूर्वक इनके दिन बीतने लगे। एक दिन ज्येष्ठ मासके मध्याह्नकालमें अपने परिवारके साथ इन्होंने किसी प्रकार एक प्रस्थ (लगभग सेरभर) जौ प्राप्त कर उससे सत्तू (जौका आटा) तैयार किया और जप तथा नैत्यिक नियम पूर्ण करके यथोचित अग्निमें देवाहुति देकर स्त्री-पुत्र तथा पुत्रवधूसहित उस सत्तूको चार भागोंमें बाँटकर भोजनके लिये बैठे ही थे कि एक अतिथि ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचे। स्वागत कर महर्षिने उनसे भोजन करनेके लिये प्रार्थना की और अपना सत्तू-भाग उन्हें प्रदान किया। वे ब्राह्मण महर्षिका भाग खा गये, पर तृप्त नहीं हुए। मुद्गल चिन्तामें पड़ गये। तब उनकी धर्मभार्याने कहा—'स्वामिन्! मेरा भाग इन्हें दे दें।' पतिव्रता पत्नीकी बात सुनकर उन्होंने उसे भूखी जानकर और 'स्त्रीकी रक्षा करना अपना कर्तव्य है' यह स्मरणकर स्त्रीके भागका सत्तू लेनेकी इच्छा नहीं की, किंतु उसके बार-बार आग्रह करनेपर मुद्गलने अपनी स्त्रीके भागका सत्तू भी अतिथि ब्राह्मणको प्रार्थनापूर्वक निवेदित कर दिया, परंतु तब भी तृप्ति नहीं हुई। महर्षि पुनः चिन्तामें पड़ गये। पिताकी स्थिति समझकर पुत्रने भी अपना भाग ब्राह्मणको देनेके

लिये कहा, परंतु पिताके द्वारा अनेक प्रकारसे समझानेपर भी पुत्र नहीं माना। विवश होकर पिताने पुत्रके भागका सत्तू भी अतिथि ब्राह्मणको समर्पित कर दिया। इतनेपर भी वे संतृप्त न हो सके। इसपर महर्षि मुद्गल बड़े असमंजसमें पड़ गये। अतिथि भूखे रह जायँ, यह तो बड़ा पाप होगा, तब क्या करना चाहिये, क्योंकि सेरभर सत्तू भी तो इस अकालके समय उन्हें बहुत दिनोंके बाद बड़ी कठिनतासे प्राप्त हुआ था। जो अपर्याप्त सिद्ध हुआ। तदनन्तर पुत्रवधूने भी अपने भागका सत्तू देना चाहा, परंतु मुद्गल पुत्रवधूका भाग लेना नहीं चाहते थे, क्योंकि कई दिनोंके भूख-प्याससे पुत्रवधूका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो चुका था, वह क्षीण-प्राणा हो गयी थी तथापि पुत्रवधूने बार-बार आग्रह करते हुए कहा—'तात! मेरा शरीर, प्राण, धर्म और परलोक—सब आपलोगोंकी सेवाके लिये है, अतः मुझ दृढ़भक्ताको अपना अंग समझकर मेरा यह सत्तूभाग अतिथिको देनेके लिये स्वीकार कर लीजिये' तब विवश होकर मुद्गलने पुत्रवधूका भी भाग ब्राह्मण देवताको अर्पित कर दिया।

इसपर वे अतिथि ब्राह्मण अत्यन्त संतुष्ट हो गये और मानव-विग्रह त्यागकर साक्षात् धर्मके रूपमें प्रकट होकर महर्षि मुद्गलके दानकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'महर्षे! मैं साक्षात् धर्म हूँ, तुम्हारे धर्मकी परीक्षा लेने आया था। तुम धन्य हो, तुम्हारा कुटुम्ब धन्य है। तुमने जो न्यायोपार्जित शुद्ध, पवित्र अन्नका इस प्रकार श्रद्धा तथा प्रसन्नतासे दान किया, उससे सभी स्वर्गस्थ देवता विस्मित होकर इसकी घोषणा कर रहे हैं और तुम्हारे ऊपर यह पुष्पवृष्टि भी उन्हींके द्वारा हो रही

है। ब्रह्मलोकके महर्षिगण तुम्हारे दर्शनकी इच्छा रखते हैं। तुम्हारे सभी पितृगण मुक्त हो गये और भविष्यमें होनेवाली तुम्हारी संतानें भी तुम्हारे इस सक्तुप्रस्थीय दानके पुण्य-प्रतापसे श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होंगी। अब तुम सामने उपस्थित इस दिव्य विमानपर आरूढ़ होकर सपरिवार स्वर्ग चलो। तुम्हारे इस सेरभर सत्तू-दानके सामने प्रचुर दक्षिणायुक्त, बहुसंख्यक राजसूय एवं अश्वमेधादि यज्ञोंकी कोई गणना नहीं। तुमने अक्षय लोक प्राप्त कर लिया। लोक-लोकान्तरोंमें तुम्हारी अनन्तकालतक अविचल कीर्ति बनी रहेगी।'

भगवान् धर्मके ऐसा कहनेपर महर्षि मुद्गल अपनी पत्नी-पुत्रादिसहित विमानपर आरूढ़ होकर ब्रह्मलोकको चले गये और भगवान् धर्म अन्तर्धान हो गये।

उसके थोड़ी ही देर पश्चात् सत्तूकी गन्ध पाकर एक नेवला अपने बिलसे बाहर निकला। वहाँ गिरे हुए अलसिक्त रजकणोंके स्पर्श, स्वर्गसे गिरे हुए दिव्य पुष्पोंके संस्पर्श तथा मुद्गलद्वारा उस धर्मरूपी ब्राह्मणको दान देते समय गिरे हुए सक्तुकणोंकी गन्ध लेने एवं उनके तपके प्रभावसे उस नेवलेका मस्तक और आधा शरीर सुवर्णमय हो गया। ऐसी आश्चर्यजनक घटना देखकर नेवला अत्यन्त विस्मित हो गया। अब वह इस चिन्तामें पड़ा कि उसके शरीरका शेष भाग कैसे सुवर्णमय हो।

बहुत दिनोंके पश्चात् जब महाराज युधिष्ठिरके महायज्ञका वृत्तान्त समूचे देशमें फैला, तब बड़ी आशा लगाकर वह नेवला उनके यज्ञीय क्षेत्रमें पहुँचा और इस अभिलाषासे वहाँ लोटने-पोटने लगा कि मेरा यह शेष शरीर अब अवश्य ही स्वर्णिम

हो जायगा, किंतु बहुत प्रयत्न करनेपर जब उसका एक रोम भी स्वर्णिम न हो सका, तब वह उस यज्ञके सभासदों एवं विशिष्ट ब्राह्मणोंके सामने गया और उसने सहसा अट्टहास किया। इससे मृग-पक्षी तो भयभीत हो ही गये, वहाँके सभासद् भी कम आश्चर्यचकित न हुए। फिर उस नेवलेने मनुष्यवाणीमें कहा—'राजाओ और सभासदो! तुम्हारा यह यज्ञ उञ्छवृत्तिधारी, कुरुक्षेत्र-निवासी मुद्गल ब्राह्मणके प्रस्थमात्र सत्तूदान करनेके तुल्य भी नहीं है।' इसपर घबड़ाकर सभी सभासद् अपने आसनोंसे उठ खड़े हुए और उसे चारों ओरसे घेरकर कहने लगे—'भाई! धर्मराज युधिष्ठिरके इस महायज्ञमें सत्पुरुषोंके बीच तुम कहाँसे आ पहुँचे? अहो! तुम्हारी शक्ति, शास्त्रज्ञान और तुम्हारा यह अर्धस्वर्णिम शरीर—सब कुछ अद्भुत है। तुम कौन हो, जो इस यज्ञकी निन्दा कर रहे हो। हमलोगोंने शास्त्रीय विधिसे मन्त्रोच्चारण कर आहुतियाँ दी हैं और श्रद्धापूर्वक उचित दृष्टिसे सबको यथोचित दान-सम्मान दिया है। सच बताओ, दिव्य रूप धारण किये हुए तुम हो कौन?'

इसपर उस नेवलेने हँसकर कहा—'विप्रवृन्द! मैंने गर्वातिरेकमें आकर आपलोगोंसे कोई मिथ्या बात नहीं कही है। आपलोग मेरे शरीरको देख ही रहे हैं। यह महर्षि मुद्गलके पत्नी, पुत्र और पुत्रवधूसहित दिये दानके लवांशके स्पर्शका प्रभाव है, जो मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया तथा उन लोगोंको भक्तिपूर्वक प्रस्थभर सत्तू-दानसे दिव्य लोकोंसहित ब्रह्मलोककी प्राप्ति हो गयी। तबसे मैं अनेक धर्मस्थलों, पुण्यक्षेत्रों, तपोवनों और प्रसिद्ध यज्ञ-स्थलोंमें आया-जाया और लोटा करता हूँ कि

मेरा शेष शरीर भी स्वर्णिम हो जाय। महाराज युधिष्ठिरके इस प्रभावशाली महायज्ञकी चतुर्दिक् ख्याति सुनकर मैं बड़ी आशा लगाये यहाँ पहुँचा, किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। इसीलिये मैंने हँसकर कहा था कि 'महाराजका यह यज्ञ मुद्गल विप्रके सेरभर सत्तू-दानके बराबर भी नहीं है', यह बात सर्वांशमें सही है। इसमें यज्ञके प्रभाव तथा उसकी निन्दाकी कोई बात नहीं है। मुद्गलके दिव्य दान तथा धर्मका प्रत्यक्ष परिणाम ही मैंने आपके सामने निवेदित किया है, जिसे आपलोग भी देख ही रहे हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें कहा गया है—'संयम, शील, आर्जव और तप तथा दानयुक्त कर्म ही श्रेष्ठ हैं और ये एक-एक गुण बड़े यज्ञोंके समान हैं।'

ऐसा कहकर वह नेवला चला गया और वे ब्राह्मण तथा राजा भी इस आश्चर्यको देख-सुनकर सविस्मय अपने-अपने स्थानको चले गये।

(मुद्गलपुराण)

~~○~~

# दानधर्मके आदर्श

## दैत्यराज विरोचन

दैत्यराज विरोचन भक्तश्रेष्ठ प्रह्लादके पुत्र थे और प्रह्लादके पश्चात् ये ही दैत्योंके अधिपति बने थे। प्रजापति ब्रह्माके समीप दैत्योंके अग्रणीरूपमें धर्मकी शिक्षा ग्रहण करने विरोचन ही गये थे। धर्ममें इनकी श्रद्धा थी। आचार्य शुक्रके ये बड़े निष्ठावान् भक्त थे और शुक्राचार्य भी इनसे बहुत स्नेह करते थे।

अपने पिता प्रह्लादजीका विरोचनपर बहुत प्रभाव पड़ा था। इसलिये ये देवताओंसे कोई द्वेष नहीं रखते थे। संतुष्टचित्त विरोचनके मनमें पृथ्वीपर भी अधिकार करनेकी इच्छा नहीं हुई, स्वर्गपर अधिकार करना भला वे क्यों चाहते! वे तो सुतलके राज्यसे ही संतुष्ट थे।

शत्रुकी ओरसे सावधान रहना चाहिये, यह नीति है और सम्पन्न लोगोंका स्वभाव है अकारण शंकित रहना। अर्थका यह दोष है कि वह व्यक्तिको निश्चिन्त और निर्भय नहीं रहने देता। असुरों एवं देवताओंकी शत्रुता पुरानी है; क्यों असुर रजोगुण-तमोगुणप्रधान हैं और देवता सत्त्वगुणप्रधान। अतः देवराज इन्द्रको सदा यह भय व्याकुल रखता था कि यदि कहीं असुरोंने अमरावतीपर आक्रमण कर दिया तो परम धर्मात्मा विरोचनका युद्धमें सामना करना देवताओंकी शक्तिसे बाहर है, उस समय पराजय ही हाथ लगेगी।

शत्रु प्रबल हो, युद्धमें उसका सामना सम्भव न हो तो उसे नष्ट करनेका प्रबन्ध पहले करना चाहिये। इन्द्र आक्रमण करके अथवा धोखेसे विरोचनको मार दें तो शुक्राचार्य अपनी संजीवनी-विद्याके प्रभावसे उन्हें जीवित कर देंगे और आजके प्रशान्त

विरोचन क्रुद्ध होनेपर देवताओंके लिये विपत्ति बन जायँगे। अतएव देवगुरु बृहस्पतिकी मन्त्रणासे इन्द्रने ब्राह्मणका वेश बनाया और सुतल पहुँचे।

विरोचनने अभ्यागत ब्राह्मणका स्वागत किया। उनके चरण धोये, पूजा की। इसके पश्चात् हाथ जोड़कर बोले—'मेरा आज सौभाग्य उदय हुआ कि मुझ असुरके सदनमें आपके पावन चरण पड़े। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

इन्द्रने विरोचनकी दानशीलताकी प्रशंसा की और विरोचनके आग्रहपर बोले—'मुझे आपकी आयु चाहिये।'

दैत्यराजका सिर माँगना व्यर्थ था, क्योंकि गुरु शुक्राचार्यकी संजीवनी कहीं गयी नहीं थी। किंतु विरोचन किंचित् भी हतप्रभ नहीं हुए। उन्होंने प्रसन्नतासे कहा—'मैं धन्य हूँ। मेरा जन्म लेना सफल हो गया। मेरा जीवन स्वीकार करके आपने मुझे कृतकृत्य कर दिया।'

विरोचनने अपने हाथमें खड्ग उठाया और एक हाथसे अपना मस्तक काटकर दूसरे हाथसे ब्राह्मणकी ओर बढ़ा दिया। इन्द्र भयके कारण वह मस्तक लेकर शीघ्र स्वर्ग चले आये। विरोचनको तो भगवान्‌ने अपना पार्षद बना लिया।

## महादानी कर्ण

एक बार इन्द्रप्रस्थमें पाण्डवोंकी सभामें श्रीकृष्णचन्द्र कर्णकी दानशीलताकी प्रशंसा करने लगे। अर्जुनको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—'हृषीकेश! धर्मराजकी दानशीलतामें कहाँ त्रुटि है जो उनकी उपस्थितिमें आप कर्णकी प्रशंसा कर रहे हैं?'

इस तथ्यको तुम स्वयं समयपर समझ लोगे। यह कहकर उस समय श्रीकृष्णने बातको टाल दिया।

कुछ समय पश्चात् अर्जुनको साथ लेकर श्यामसुन्दर ब्राह्मणके

वेशमें पाण्डवोंके राजसदनमें आये और बोले—'राजन्! मैं अपने हाथसे बना भोजन करता हूँ। भोजन मैं केवल चन्दनकी लकड़ीसे बनाता हूँ और वह काष्ठ तनिक भी भीगा नहीं होना चाहिये।'

उस समय खूब वर्षा हो रही थी। युधिष्ठिरने राजभवनमें पता लगा लिया, किंतु सूखा चन्दन-काष्ठ कहीं मिला नहीं। सेवक नगरमें गये, किंतु संयोग ऐसा कि जिसके पास भी चन्दन मिला, सब भीगा हुआ मिला। धर्मराजको बड़ा दु:ख हुआ, किंतु उपाय कुछ भी न था।

उसी वेशमें वहाँसे सीधे श्रीकृष्ण और अर्जुन कर्णकी राजधानी पहुँचे और वही बात कर्णसे कही। कर्णके राजसदनमें भी सूखा चन्दन नहीं था और नगरमें भी नहीं मिला। लेकिन कर्णने सेवकोंसे नगरमें चन्दन न मिलनेकी बात सुनते ही धनुष चढ़ाया। राजसदनके मूल्यवान् कलांकित द्वार चन्दनके थे। अनेक पलंग चन्दनके पायेके थे। कई दूसरे उपकरण चन्दनके बने थे। क्षणभरमें बाणोंसे कर्णने उन सबको चीरकर एकत्र करवा दिया और बोला—'भगवन्! आप भोजन बनायें।'

वह आतिथ्य प्रेमके भूखे गोपाल कैसे छोड़ देते। वहाँसे तृप्त होकर श्रीकृष्ण जब बाहर आ गये, तब अर्जुनसे बोले—'पार्थ! तुम्हारे राजसदनमें भी द्वारादि चन्दनके ही हैं। उन्हें देनेमें पाण्डव कृपण भी नहीं हैं। किंतु दान-धर्ममें जिसके प्राण बसते हैं, उसीको समयपर स्मरण आता है कि पदार्थ कहाँसे कैसे लेकर दे दिया जाय।'

x x x x

'आज दानशीलताका सूर्य अस्त हो रहा है।' जिस दिन कर्ण युद्धभूमिमें गिरे, सायंकाल शिविरमें लौटकर श्रीकृष्ण खिन्नमुख बैठ गये।

'अच्युत! आप उदास हों, इतनी महानता क्या कर्णमें है?' अर्जुनने पूछा।

'चलो! उस महाप्राणके अन्तिम दर्शन कर आयें। तुम दूरसे ही देखते रहना।' श्रीकृष्ण उठे, उन्होंने वृद्ध ब्राह्मणका रूप बनाया। रक्तसे कीचड़ बनी, शवोंसे पटी, छिन्न-भिन्न अस्त्र-शस्त्रोंसे पूर्ण युद्धभूमिमें रात्रिकालमें शृगालादि घूम रहे थे। ऐसी भूमिमें मरणासन्न कर्ण पड़े थे।

'महादानी कर्ण!' पुकारा वृद्ध ब्राह्मणने।

'मैं यहाँ हूँ, प्रभु!' किसी प्रकार पीड़ासे कराहते हुए कर्णने कहा।

'तुम्हारा सुयश सुनकर बहुत अल्प द्रव्यकी आशासे आया था।' ब्राह्मणने कहा।

'आप मेरे घर पधारें।' कर्ण और क्या कहते?

'मुझे जाने दो! इधर-उधर भटकनेकी शक्ति मुझमें नहीं।' ब्राह्मण रुष्ट हुए।

'मेरे दाँतोंमें स्वर्ण लगा है। आप इन्हें तोड़कर ले लें।' कर्णने सोचकर कहा।

'छि:! ब्राह्मण अब यह क्रूर कर्म करेगा।' ब्राह्मण और रुष्ट हुए।

किसी प्रकार कर्ण खिसके। उन्होंने पास खड़े एक शस्त्रपर मुख पटक दिया। शस्त्रसे टूटे दाँतोंका स्वर्ण निकला, किंतु रक्तसना स्वर्ण ब्राह्मण कैसे ले। धनुष भी चढ़ानेकी शक्ति कर्णमें नहीं थी। मरणासन्न, अत्यन्त आहत कर्णने हाथ तथा घायल मुखसे धनुष चढ़ाकर वारुणास्त्रके द्वारा जल प्रकट कर स्वर्ण धोया और दान किया। श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। अन्तिम समय कर्णको दर्शन देकर कृतार्थ करने ही तो पधारे थे लीलामय श्यामसुन्दर! उनके देवदुर्लभ चरणोंपर सिर रखकर कर्णने देहत्याग किया।

~~○~~

# न्यायमार्गसे लाभ

नाभानेदिष्ठ मनुके पुत्र थे। वे ब्रह्मचर्य-आश्रमके अन्तर्गत विधीयमान संस्कारोंसे युक्त होकर अपने गुरुके समीप वेदाध्ययनमें रत रहते। जब पिताकी सम्पत्तिके बँटवारेका समय आया तो नाभानेदिष्ठके अन्य भाइयोंने आपसमें सारी सम्पत्तिका भाग बाँट लिया और उन्हें कुछ भी नहीं दिया। जब इन्हें इस बातका पता लगा तो इन्होंने अपने पिता मनुके पास जाकर पूछा कि क्या आपने मेरे लिये अपनी सम्पत्तिका कोई भी भाग स्वीकृत नहीं किया है? उसके उत्तरमें मनुने उनसे कहा कि यदि पैतृक सम्पत्तिमेंसे तुम्हें भाग नहीं मिला तो कोई बात नहीं, तुम उससे बड़ी एवं उत्कृष्ट सम्पत्तिको पानेके अधिकारी हो। इस उत्तम सम्पत्तिको प्राप्त करनेका उपाय बतलाते हुए उन्होंने उनसे कहा कि आंगिरस ऋषिगण स्वर्गफलकी कामनासे सत्रयाग (बारह दिनसे अधिक चलनेवाला सोमयाग)-का संकल्प लेकर आरम्भके छः दिनका अनुष्ठान पूरा कर चुके हैं। इसके आगे विशिष्ट दिनोंके विधिसम्मत अनुष्ठानको सम्पन्न करनेमें वे दिग्भ्रमित एवं मोहित हो रहे हैं। तुम उन ऋषिगणोंके पास जाओ और उनके सत्र-यागको पूर्ण करनेमें सहायक बनो। अड़तीस मन्त्र युक्त दो सूक्तोंका पाठ वहाँ शस्त्ररूपमें करो। (श्रौत यागोंमें होता नामक ऋत्विक्द्वारा यज्ञसे सम्बन्धित देवताओंकी दिव्य स्तुतिरूप शंसना (प्रशंसा)-को 'शस्त्र'के नामसे अभिहित किया जाता है।) श्रीमनुने आगे कहा कि इस शस्त्र-पाठके बदलेमें वे ऋषिगण तुम्हें एक हजार गायोंसे युक्त उत्तम सम्पत्तिको प्रदान करेंगे।

अपने पिताकी प्रेरणासे उत्साहित नाभानेदिष्ठ आंगिरसोंके

पास गये और उनकी यथाविधि सहायता की। वे आंगिरस इन ऋग्वेदके दो सूक्तोंके दिव्य सामर्थ्यसे यज्ञकी पूर्णताको प्राप्त किये और स्वर्ग जानेकी सफलतासे युक्त होकर उन्हें सहस्र गोरूप-सम्पत्ति प्रदान की।

इस सम्पत्तिको लेनेके लिये नाभानेदिष्ठ जब तत्पर हुए तो उसी समय एक कृष्णवर्णका अत्यन्त बलशाली पुरुष यज्ञस्थलके उत्तर तरफसे उत्पन्न हुआ और उनसे बोला कि 'यज्ञके समस्त अवशिष्ट भागका अधिकारी मैं हूँ। अतः इन गायोंको तुम स्वीकार न करो।' इसपर नाभानेदिष्ठने यह कहा कि 'आंगिरसोंने ये गायें मुझे प्रदान की हैं।' यह सुनकर उस कृष्णपुरुषने नाभानेदिष्ठसे कहा है कि 'हे ब्रह्मवेत्ता! तुम अपने पिता श्रीमनुसे ही इसका समाधान पूछो कि यह भाग किसे मिलना चाहिये?'

इस समस्याके समाधानहेतु नाभानेदिष्ठ अपने पिताके पास आये और उनसे न्यायसम्मत निर्णय देनेका निवेदन किया। इसके उत्तरमें श्रीमनुने कहा कि न्यायतः यज्ञके शेष-भागपर उस कृष्ण-पुरुष (रुद्र)-का ही अधिकार बनता है। इस न्याययुक्त समाधानको नाभानेदिष्ठने सहजरूपसे स्वीकार किया और पुनः यज्ञस्थलपर जाकर उस कृष्ण पुरुषसे निवेदन किया कि इस यज्ञ-भागपर आपका ही अधिकार बनता है। उनके इस सहज भाव एवं सत्यनिष्ठाको देखकर कृष्ण-पुरुषरूप रुद्रदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने वह समस्त गो-सम्पत्ति उन्हें आशीर्वादके साथ प्रदान कर दी।

(ऋग्वेद)

~~○~~

# पूज्य सदैव सम्माननीय

सप्तसिन्धवके प्रतापशाली सम्राटोंमें इक्ष्वाकुवंशीय महाराज त्रैवृष्ण त्र्यरुण अत्यन्त प्रतापी और उच्चकोटिके विद्वान् राजा हुए हैं। सत्यनिष्ठा, प्रजावत्सलता, उदारता आदि सभी प्रशंसनीय सद्गुण मानो उन-जैसे सत्पात्रमें बसनेके लिये लालायित रहते थे। समन्वयके उस सेतुको पाकर संसारमें प्रायः दीखनेवाला लक्ष्मी-सरस्वतीका विरोध भी मानो सदाके लिये मिट गया।

महाराजकी तरह उनके पुरोहित वृशऋषि भी उच्चकोटिके अद्वितीय विद्वान्, मन्त्रद्रष्टा, आभिचारिकादि कर्मोंमें अतिनिष्णात ब्रह्मवेत्ता थे। साथ ही वे अत्यन्त शूरवीर भी थे।

प्राचीन भारतीय राजनीतिमें पुरोहित राजाकी मन्त्रिपरिषद्का प्रमुख घटक माना जाता था। जहाँ राजाकी क्षात्रशक्ति प्रजामें आधिभौतिक सुख-सुविधा और शान्तिके प्रस्थापनार्थ समस्त लौकिक साधनोंका संयोजन और बाधक तत्त्वोंका विघटन करती थी, वहीं पुरोहितकी ब्राह्मशक्ति आध्यात्मिक एवं आधिदैविक सुख-शान्तिके साधन जुटाने और आधिदैविक बाधाओंके मिटा देनेके प्रकारसे पोषित महाराज त्रैवृष्णकी प्रजा सभी प्रकारकी सुख-सुविधाओंसे परिपूर्ण रहा करती। वृशऋषि-जैसे सर्वसमर्थ पुरोहितके मणि-कांचनयोगसे प्रजावर्गमें सुख-शान्तिका साम्राज्य छाया हुआ था।

एक बार महाराजने सोचा कि दिग्विजय-यात्रा की जाय। इसमें उनका एकमात्र अभिप्राय यही था कि सभी शासक एक राष्ट्रिय भावमें आबद्ध हो कार्य करें। वे किसी राजाको जीत

करके उसकी सम्पत्तिसे अपना कोष भरना नहीं चाहते थे। प्रत्युत उनका यही लक्ष्य था कि इस अभियानमें विजित सम्पत्ति उसी राजाको लौटाकर उसे आदर्श शासनपद्धतिका पाठ पढ़ाया जाय और उसपर चलनेके लिये प्रेरित किया जाय। इस प्रसंगमें जो सर्वथा दुष्ट, अभिमानी, प्रजापीड़क शासक मिलें, उनका कण्टकशोधन भी एक आनुषंगिक लक्ष्य मान लिया गया। अत: उन्होंने पुरोहित वृशऋषिको बुलाकर उनसे सादर प्रार्थना की कि 'प्रभो मैं दिग्विजय-यात्रा करना चाहता हूँ। इसमें स्वयं आपको मेरा सारथ्य स्वीकार करना होगा।'

ऋषिने कहा—'जैसी महाराजकी इच्छा! क्या आप बता सकते हैं कि मैंने अपने यजमानकी कभी किसी इच्छाका सम्मान नहीं किया?'

महाराजने कहा—'ऋषे, इस कृपाके लिये मैं अनुगृहीत हूँ।'

x x x x

आज महाराज ऐक्ष्वाक त्रैवृष्ण त्र्यरुणकी विजययात्राका सुमुहूर्त है। इसके लिये कई दिनोंसे तैयारियाँ चली आ रही हैं। चतुरंगवाहिनी पूरे साज-सामानके साथ सज्ज है। सुन्दर भव्य रथ अनेकानेक अलंकरणोंसे सजाया गया है। महाराज त्र्यरुणने प्राचीन वीरोंका बाना पहन लिया है—सिरपर लौहनिर्मित शिरस्त्राण और शरीरमें कवच! वामहस्तमें धनुष तो दक्षिण हस्तमें भाला एवं बाणखचित तूणीर पीठपर लटक रहा है तथा पैरोंमें पड़े हैं, वाराहचर्म निर्मित जूते। पुरोहित वृशऋषि भी, जो कभी वल्कल वसनोंमें विराजते, आज कवच-शिरस्त्राणसे सुशोभित हो घोड़ोंकी रास

पकड़े रथके अग्र भागपर विराजते दीख पड़े। प्रजाके आश्चर्यका ठिकाना न रहा; फिर देर क्या थी? रण-दुन्दुभि बज उठी और सवारी निकल पड़ी विजयके लिये।

महाराज त्र्यरुणकी सवारी जिधर जाती, उधर ही विजयश्री हाथमें जयमाला लिये अगवानी करने लगती। एक नहीं, दो नहीं—दसियों, शतियों, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओंके जनपदोंके सामन्त और पुरोंके राजा बहुमूल्य भेंटोंके साथ हृदयके भावसुमन महाराजके चरणोंपर चढ़ाते, स्वागतके लिये पलक-पाँवड़े बिछाते, तो कुछ ऐसे भी मिलते जो अपने-अपने सुरक्षित बलसे महाराज त्र्यरुणकी सेनाके साथ दो-दो हाथ करनेको तैयार रहते। महाराज जहाँ प्रजापीड़क, मदमत्त शासकोंका गर्व चूर कर उन्हें सन्मार्गका पथिक बनाते, वहीं पुत्रकी तरह प्रजाके पालक शासकोंका अभिनन्दन करते और उन्हें सन्मार्गनिष्ठ बने रहनेके लिये प्रोत्साहित करते।

महाराज त्र्यरुणकी यह विजय-यात्रा किसीके लिये उत्पीड़क नहीं हुई। उन्होंने प्रत्येक सत्पथ-पथिकका स्वागत ही किया। यही कारण है कि इस विजय-यात्रासे सर्वत्र जनसाधारणमें उत्साहकी अपूर्व बाढ़ आ गयी। यात्रा जहाँ प्रस्थान करती, वहीं जनसाधारण नागरिक एवं जनपदवासी सहस्रोंकी संख्यामें उसकी शोभा देखने जुट जाते।

कुछ ही दिनोंमें सर्वत्र विजय-वैजयन्ती फहराते हुए महाराज त्रयरुण बड़े उल्लासके साथ अपनी राजधानीकी ओर लौट रहे थे। राज्यकी सारी जनता उनके दर्शनार्थ उमड़ पड़ी। व्यवस्थापकोंके लिये जनतापर नियन्त्रण पाना कठिन हो रहा था। सर्वत्र उत्साह और उल्लासका वातावरण छाया था कि अकस्मात् रंगमें भंग हो

गया। लाख ध्यान देने और बचानेपर भी शोभायात्राके दर्शनार्थ उतावला एक अबोध ब्राह्मण-बालक रथ-चक्रके बीचमें आ गया और सारा मजा किरकिरा हो गया।

राजकीय रथसे कुचलकर एक ब्राह्मण-बालककी हत्या हो जाय, जिसपर आरूढ़ हों सम्राट् और जिसे हाँकनेवाले हों साम्राज्यके पुरोहित! अब अपराधी किसे माना जाय? प्रजाके लिये यह बहुत बड़ा यक्ष प्रश्न उपस्थित हो गया। वादी थे उनके सम्राट् त्रैवृष्ण और प्रतिवादी थे ब्रह्मवर्चस्वी पुरोहित ऋषि वृश।

उपस्थित जनसमुदाय ही न्यायकर्ता बना। उसके प्रमुख नायकके समक्ष दोनोंने अपने-अपने तर्क रखे। महाराजने कहा—'पुरोहित रथके चालक थे। उन्हें इसकी सावधानी रखनी चाहिये थी। ब्राह्मण-बालककी हत्याका दोष उनपर भी है।'

पुरोहितने कहा—'वास्तवमें रथके स्वामी रथी तो महाराज हैं और मैं तो हूँ सारथि। वे ही मुख्य हैं और मैं गौण। अवश्य ही रथकी बागडोर मेरे हाथमें रही, पर फलके भागी तो महाराज ही हैं। जब सैनिकोंके युद्ध जीतनेपर भी विजयफल, विजयका सेहरा राजाके ही सिरपर रखा जाता है तो रथी होनेके कारण ब्राह्मणबालककी हत्याका दोष भी उनपर ही मढ़ा जाना चाहिये।'

निर्णायकोंकी समझमें कुछ नहीं आ रहा था। पुरोहितका कहना न्यायसंगत तो लगता, पर महाराजका मोह और प्रभाव उन्हें न्यायसे विचलित करने लगता। अन्ततः वही हुआ। निर्णायक सत्ताके प्रभावमें आ गये और उन्होंने महाराजको निर्दोष और पुरोहितको दोषी घोषित कर दिया।

पुरोहित राष्ट्रिय हितकी दृष्टिसे मौन रह गये। उन्होंने प्रतिवादमें एक भी शब्द नहीं कहा।

सभी उपस्थित जन स्तब्ध थे। इसी बीच पुरोहितने वार्ष सामका मंजुल गान गाया। फलस्वरूप अकस्मात् मृत ब्राह्मण-बालक जी उठा। सभी यह देख आश्चर्यचकित रह गये, पर पुरोहित यह कहते चले गये कि ऐसे राज्यमें रहना किसी मनस्वी पुरुषके लिये उचित नहीं। सबने रोकनेका बहुत प्रयत्न किया, परंतु ऋषिने किसीकी एक न सुनी।

x x x x

ब्राह्मण-बालकके जी जानेसे लोगोंके आनन्दका ठिकाना न रहा, पर पुरोहितको ही अपराधी घोषित करना और उनका राज्यसे चले जाना सबको खटकने लगा। कारण, यह समस्त राज्यके लिये खतरेसे खाली नहीं था; क्योंकि पुरोहितको राष्ट्रहितमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। वे अपने तपोबल और मन्त्रशक्तिसे सारे राष्ट्रकी सब प्रकारसे रक्षा किया करते हैं। वे पाँच ज्वालाओंसे युक्त वैश्वानर कहे गये हैं। उनकी वाणी-स्थित प्रथम ज्वाला स्वागत एवं सम्मानपूर्ण वचनोंसे शान्तकी जाती है। पाद्यके लिये जल लानेसे पादस्थित ज्वाला शान्त होती है। शरीरको नाना अलंकरणोंसे अलंकृत कर देनेपर त्वक्-स्थित ज्वालाका शमन होता है, नितान्त तर्पणसे हृदयस्थित ज्वाला और घरमें पूर्ण स्वातन्त्र्य देनेसे उनकी उपस्थकी ज्वाला शान्त होती है। अतः राजाका कर्तव्य है कि वह पुरोहित-रूप वैश्वानरकी इन पाँचों ज्वालाओंको उन-उन वस्तुओंके संयोजनसे शान्त रखे। अन्यथा वह आग राष्ट्रको भस्म कर डालती है।

यहाँ तो ऋषि वृश पुरोहितके अपमान और उससे क्रुद्ध होकर उनके चले जानेसे राष्ट्रको उनकी ज्वालाओंने नहीं जलाया। कारण, वे स्वभावतः बड़े दयालु थे; पर उनके चले जानेके साथ

पूरे राज्यसे ही अग्नि उठ गया।

सायंकाल होते-होते राजभवनके बाहर प्रजाजनोंका समुद्र उमड़ पड़ा और एक ही आक्रोश मचा—'हमें आग दो। सारे परिवार दिनभरसे भूखे हैं। आग सुलगाते-सुलगाते पूरा दिन बीत गया, पर उसमें तेज ही नहीं आता। चूल्हा जलता ही नहीं, रसोई पके तो कैसे? हमारे बाल-बच्चे भूखसे छटपटा रहे हैं।'

महाराज त्रैवृष्ण बरामदेमें आ गये। अपनी प्रजाकी यह दशा देख उन्हें भी अत्यन्त दुःख हुआ। यह समझते देर न लगी कि यह पूज्य पुरोहितके अपमानका ही दुष्परिणाम है। उन्होंने प्रजाजनोंसे थोड़ा धैर्य रखनेको कहा और अपने प्रमुख अधिकारियोंको आदेश दिया कि 'जहाँ-कहीं पुरोहितजी मिलें, उन्हें बड़े आदर और नम्रताके साथ मेरे पास शीघ्र-से-शीघ्र लाया जाय।'

सम्राट्का कठोरतम आदेश! उसके पालनमें देर कहाँ? चारों ओर चर भेजे गये और अन्ततः पुरोहितको ढूँढ़ ही निकाला गया। वे निकटवर्ती दूसरे किसी सामन्तके राज्यमें एक उद्यानमें बैठे हुए थे।

राजकीय अधिकारी पुरोहितको ले आये तो महाराज उनके चरणोंमें गिर पड़े और कहने लगे—'महाराज! क्षमा करें और किसी तरह प्रजाको उबारें। आपके चले जानेसे अग्निदेव भी क्रुद्ध हो राज्यभरसे लुप्त हो गये।'

ब्राह्मण-हृदय किसीकी पीड़ा देखते ही पिघल जाता है। प्रजाकी यह दुरवस्था देख ऋषि विचारमें पड़े कि आखिर हुआ क्या? उन्होंने पाँच मिनट ध्यान किया और महाराजसे कहा कि 'अन्तःपुरमें चलें।'

महाराज आश्चर्यमें पड़े कि ऋषि क्या कर रहे हैं! फिर भी

चुपचाप वे उनके साथ अन्तःपुरमें पधारे। ऋषिने एक खाटके नीचे छिपा रखा एक शिशु महाराजको दिखाया। महाराज कुछ समझ न पाये।

ऋषिने कहा—'महाराज, आपकी पत्नियोंमें एक पिशाचिनी बन गयी है। मेरे रहते उसे अपना उत्पात मचानेका अवसर नहीं मिल पाता था। परंतु मेरे यहाँसे जाते ही उसने चट राज्यभरके अग्निसे सारा तेज उठाकर यहाँ शिशुरूपमें छिपा दिया है। यही कारण है कि पूरे राज्यके अग्निसे तेज जाता रहा।'

महाराज स्तब्ध रह गये। वे पुरोहितकी ओर देख करुणाभरी आँखोंसे इस संकटसे उबारनेकी विनम्र प्रार्थना करने लगे।

वृशऋषि शिशुरूपधारी अग्नि-तेजको सम्बुद्ध कर आर्षवाणीमें स्तुति करने लगे—

'अग्नि-नारायण! आप बृहत् ज्योतिके साथ प्रदीप्त होते और अपनी महिमासे समस्त सांसारिक वस्तुओंको प्रकाशित करते हैं। प्रभो, आप असुरोंद्वारा फैलायी हुई मायाको दग्ध कर प्रजाजनोंको उनके कष्टोंसे बचाते हैं। राक्षसोंके विनाशार्थ अपनी ज्वालाएँ तीक्ष्ण करते हैं।'

'जातवेदा! आप अनेक ज्वालाओंसे युक्त हो निरन्तर बढ़ते हुए अपने उपासकोंकी कामनाएँ पूरी करते हैं और उन्हें निष्कण्टक धन-लाभ कराते हैं। स्वयं अन्य देव आपकी स्तुति करते हैं। भगवान् वैश्वानर! हविको सिद्ध करनेवाले आप मानवमात्रका कल्याण करें। प्रभो, आपके तेजके अभावमें आज सारी प्रजा विपन्न हो बिलख रही है। दयामय, दया करें।'

ज्यों ही पुरोहित वृशऋषिकी स्तुति पूर्ण हुई, त्यों ही वह

शिशु अदृश्य पिशाचिनीके बाहुपाशसे छूट सामने अग्निरूपमें प्रकट हो गया। पुनः जैसे ही पिशाचिनी उसे पकड़ने चली, वैसे ही ऋषिके मन्त्र-प्रभावसे भस्म हो गयी। इस प्रकार अग्निशिशुके मुक्त होनेके साथ घर-घरकी अग्नि प्रज्वलित हो उठी। प्रजावर्गके आनन्दका ठिकाना न रहा।

महाराजने अपने ब्रह्मवर्चस्वी पुरोहित वृशऋषिको साष्टांग नमस्कार किया और क्षमा माँगने लगे—'प्रभो, अपने सम्राट् पदके गर्वमें आकर मैंने अन्यायपूर्वक आपका घोर अपमान किया; फिर भी आपने कुछ नहीं कहा, चुपचाप ब्राह्मण-बालकके जीवनदानका मुझपर अनुग्रह करते हुए चले गये। परंतु मैंने जो पाप किया, उसका फल मेरी प्रजाको बुरी तरह भुगतना पड़ा, इसका मुझे भारी खेद है। धन्य है आपकी क्षमाशीलता और प्रजावत्सलता, जो आपने मुझे और मेरी प्रजाको पुनः उबार कर कृतार्थ किया।'

पुरोहितने राजाको यह कहकर उठाया और गले लगाया कि 'महाराज, इसमें मैंने क्या विशेष किया? आपके राज्यका पुरोहित होनेके नाते प्रजाका कष्ट-निवारण मेरा कर्तव्य ही है।'

महाराजके नेत्रोंसे दो अश्रु ऋषिके चरणोंपर ढुलक पड़े।

(ऋग्वेद)

~~○~~

# गुरुभक्तके देवता भी सहायक

प्राचीन कालमें चायमान अभ्यवर्ती और संजयके पुत्र प्रस्तोक नामके दो परम प्रतापी, अत्यन्त धर्मात्मा एवं परम उदार प्रजापालक राजा हुए हैं। दोनोंके राज्य अत्यन्त निकट एक-दूसरेसे सटकर थे। दोनोंकी सीमाएँ एक-दूसरेसे मिलती थीं। दोनोंके राज्योंमें सदैव यज्ञ-होम, जप-तप, दान-दक्षिणारूप धर्मानुष्ठान चलते रहते। राजा और प्रजाजनोंके बीच ऐसा स्पृहणीय ऐकमत्य पाया जाता, जिसके कारण दोनों राज्य सभी प्रकारके धन्य-धान्य, शान्ति-सौमनस्य आदिसे सर्वथा सम्पन्न थे। राज्यमें किसीपर शासन करनेकी आवश्यकता ही न पड़ती। सभी अपने-आपमें शासित थे। मात्र बाह्य आक्रमणसे बचनेके लिये दोनों राज्योंका संयुक्त सुरक्षा-मोर्चा बनाया गया था, जिसका संचालन महाराज प्रस्तोक करते रहे।

असुर तो स्वभावतः धर्म-विद्वेषी और दूसरोंकी उन्नतिको सहन न करनेवाले होते ही हैं। दोनों राजाओंकी यह सुख-समृद्धि और धर्मनिष्ठा वरशिखके पुत्र वारशिख असुरोंसे देखी नहीं गयी, अतः उन्होंने पूरी तैयारीके साथ इनपर आक्रमण कर दिया। राजाओंका संयुक्त मोर्चा होते हुए भी असुर शत्रु इतने प्रबल थे कि अन्ततः उन्हें पराजयका सामना करना पड़ा। असुर उनका बहुत सारा धन और अनेक दुर्लभतम वस्तुएँ उठा ले गये।

महाराज अभ्यावर्ती और प्रस्तोक इस दुःखद घटनासे अत्यन्त खिन्न हुए। क्या किया जाय, किस तरह असुरोंसे प्रतिशोध लिया जाय और अपहृत सम्पदा वापस प्राप्त की जाय? यह उनके समक्ष यक्ष-प्रश्न रहा। सोचते-सोचते ध्यानमें

आया कि कुलगुरु भरद्वाज ऋषिके पास जाकर उनसे प्रार्थना की जाय; यदि वे संतुष्ट हुए और उनकी सहायता मिली तो निश्चय ही हमारा मनोरथ पूर्ण हो सकेगा।

फिर क्या था? शीघ्र ही महाराज अभ्यावर्ती और प्रस्तोक गुरु भरद्वाज ऋषिकी सेवामें पहुँचे। अत्यन्त नम्र हो सरस, भावभरी स्तुतिके साथ उन्होंने अपने-अपने नामोच्चारणके साथ ऋषिका अभिवादन किया।

ऋषिने स्वागतपूर्वक उन्हें आसन दिया। कुशल-वृत्तके पश्चात् आगमनका हेतु पूछनेपर दोनोंने कहा—'ब्रह्मन्, वारशिख असुरोंने हमें बुरी तरह हराया और हमारी कितनी ही बहुमूल्य सम्पदाएँ छीन ली हैं। आपसे यह छिपा नहीं है कि हमलोग शक्तिभर अपने प्रजावर्गके साथ पुत्रवत् व्यवहार करते आये हैं और सदैव धर्मपर अधिष्ठित रहते हैं। खेद है कि फिर भी हमें यह पराजय झेलनी पड़ रही है।'

अपनी वेदना व्यक्त कर दोनों नरेशोंने अभीष्ट उपायकी प्रार्थना करते हुए कहा—'प्रभो! विचार-विमर्शके बाद हम इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि अब आप-जैसे गुरुजनोंकी कृपाके बिना उद्धार सम्भव नहीं। यदि आप इस कार्यमें पुरोहित बनकर हमें बल दें तो निश्चय ही हम पुनः शत्रुको जीत लेंगे। 'क्षत्र' वही है, जिसका निरन्तर ब्रह्मतेज संगोपन किया करता है।'

ऋषि भरद्वाजने कहा—'नृपतियो! आप लोग चिन्ता न करें। आनन्दसे घर पधारें। मैं आपका अभीष्ट पूर्ण किये देता हूँ।'

दोनों राजा ऋषिको प्रणाम कर वापस लौट गये।

भरद्वाज ऋषिने अपने पुत्र पायु ऋषिको बुलाकर कहा कि

'इन दोनों राजाओंको ऐसा बना दो कि कोई भी शत्रु इन्हें कभी पराजित ही न कर सके। मैं भी इन्द्रदेवसे इन्हें सहायता देनेके लिये प्रार्थना करूँगा।'

अभ्यावर्ती और प्रस्तोक अपने-अपने राज्योंमें लौटे तो सही, पर उन्हें चैन न थी। असुरोंने जिस प्रकार उनकी सारी प्रतिष्ठा मिट्टीमें मिला दी थी, वह उन्हें रह-रहकर शल्य-सा चुभता रहता। यह शंका भी बनी रहती कि ये असुर पुनः आक्रमण न कर दें और इससे भी अधिक मूल्य चुकानेके लिये विवश न कर दें। अवश्य ही महर्षि भरद्वाजके कथनपर उन्हें विश्वास था, फिर भी उनके मनमें आशंका बनी हुई थी।

एक दिन इसी चिन्तामें महाराज अभ्यावर्ती प्रस्तोकके घर पहुँचकर परस्पर विचार कर रहे थे कि उन्हें दूरसे अपनी ओर आते हुए एक ऋषि दीख पड़े। पास आनेपर वे समझ गये कि पायु ऋषि पधार रहे हैं।

दोनों राजाओंने उठकर ऋषिका अभिवादन किया एवं स्वागतमें आसनादि दिये। अकस्मात् अपने घर पधारे कुलगुरुके पुत्रको देख प्रस्तोककी श्रद्धा-भक्ति उद्‌बुद्ध हो उठी और उसने पूर्वमें शम्बरयुद्धमें प्राप्त शत्रुकी संचित सम्पत्तिसे विपुल सम्पदा गुप्तकोशसे निकलवाकर ऋषिके सामने रख दी। ऋषिके सामने सेवा-सामग्री रखकर प्रस्तोकने कहा—'ऋषे! हम लोग वारशिखोंके भय एवं अपमानसे अत्यन्त त्रस्त हैं। अतएव आपके पूज्य पिताके पास पहुँचे थे। उन्होंने आश्वासन भी दिया, किंतु हम लोगोंका पापी मन अभी चैन नहीं पा रहा है।'

पायु ऋषिने कहा—'घबरायें नहीं। पूज्य पिताजीने इसीलिये आपके पास मुझे भेजा है। मैं आपके अस्त्र ऐसे दिव्य

किये देता हूँ कि स्वप्नमें भी आपकी पराजय न हो सकेगी। अब आप लोग विजययात्रार्थ तैयार हो जायँ। कल प्रातः मैं अभिमन्त्रणके साथ आपके अस्त्रोंको दिव्यास्त्र बना दूँगा।'

प्रस्तोकने कहा—'जो आज्ञा!' दोनों राजा अपनी-अपनी रण-योजनामें लग गये। ऋषिकी समुचित व्यवस्थाका भार प्रधान मन्त्रीने सँभाल लिया और वे उन्हें सादर अतिथिशालामें ले गये।

दूसरे दिन दोनों राजाओंके तत्परतापूर्ण प्रयत्नसे विजययात्रार्थ सेना तैयार हो गयी। ऋषि पायु गंगाजल और कुश लेकर सामने आये और उन्होंने ऋग्वेदके प्रसिद्ध विजयप्रद सूक्तसे, जो अन्तिम आशीर्वचनसहित १९ ऋचाओंका है, एक-एक युद्धोपकरणका अभिमन्त्रण कर उनमें दिव्यास्त्र-शक्तिका आधान करना प्रारम्भ कर दिया।

वैदिक मान्यता है कि जो भी वेद-ऋचाद्वारा स्तुत होते हैं, वे सभी 'देवता' बन जाते हैं। पायु ऋषिने इन उपकरणोंका न केवल अभिमन्त्रण किया, आर्ष-वाणीमें उन प्रत्येककी स्तुति भी की, जिससे वे सभी देवतारूप दिव्यास्त्र बन गये, जो युद्धमें सदैव अमोघ होते हैं।

इस प्रकार पायु ऋषिने युद्धके समस्त उपकरणोंके अभिमन्त्रणके साथ उन्हें देवत्वशक्तियुक्त बना दिया और दोनों राजाओंको लेकर पिता भरद्वाज ऋषिके निकट पहुँचे। ऋषिकुमारने पिताको उनके द्वारा आदिष्ट कार्य पूर्ण होनेकी सूचना दी।

भरद्वाज-ऋषिने राजाओंसे कहा—'चिरंजीव अभ्यावर्तिन् और प्रस्तोक! अब आप लोग निर्द्वन्द्व होकर शत्रुपर चढ़ाई कर

दें। आपकी विजय सुनिश्चित है। मुझे पता चला है कि आपके शत्रु वारशिख आपको पराजित करनेके पश्चात् निश्चिन्त हो विश्राम कर रहे हैं। उन्हें कल्पना ही नहीं कि आप उनपर आक्रमण कर सकते हैं। रणनीतिकी दृष्टिसे यह स्थिति किसी आक्रमणकर्ताके लिये स्वर्णसुयोग होती है। इसलिये अब तनिक भी देर न करें।'

ऋषिने आगे कहा—'एक बात और! कदाचित् शत्रुसे कड़ा मुकाबला पड़ जाय तो उसकी भी व्यवस्था किये देता हूँ। देवराज इन्द्रसे अनुरोध करता हूँ कि वे अभ्यावर्तीके सहायतार्थ रणांगणमें स्वयं उतर आयें।'

ऋषिका आदेश शिरसा धारण कर अभ्यवर्ती और प्रस्तोक राजाओंने अपने शत्रु वारशिखोंपर जोरदार आक्रमण कर दिया। भरद्वाज ऋषिके कथनानुसार सचमुच शत्रु विजयके गर्वमें अचेत पड़े थे। उन्हें इस आकस्मिक आक्रमणने चक्करमें डाल दिया, किंतु कुछ ही समयमें वे सावधान हो गये तथा पूरे जोर-शोरके साथ जूझने लगे। लड़ाईका समाचार पा शीघ्र ही असुरोंके अन्य साथी भी अपनी-अपनी तैयारीके साथ कुछ ही समयमें रणांगणमें उतर आये।

इधर भरद्वाज ऋषिने राजा चायमान अभ्यावर्तीके सहायतार्थ देवराज इन्द्रकी स्तुति की। ऋषिकी स्तुतिसे प्रसन्न हो देवराज उसके सहायतार्थ हर्युपीया नदीके तटपर, जहाँ इन दोनों राजाओंका वारशिखोंके साथ युद्ध चल रहा था, आ पहुँचे।

मन्त्राभिमन्त्रित दिव्यास्त्र तो युद्धमें अपना तेज दिखा ही रहे थे। अतिशीघ्र पूरी तैयारीसे असुरोंके आ कूदनेपर भी असुरोंके प्रहार इस बार विफल हो चले, जबकि राजवर्गका

एक-एक अस्त्र लक्ष्यसे अधिक काम करने लगा, फिर जब स्वयं देवराज पहुँच गये तो पूछना ही क्या? उनके वज्रके निर्घोषसे ही वारशिखोंके सर्वप्रमुख योद्धाका हृदय विदीर्ण हो गया। देखते-देखते सारे असुरोंका सफाया हो गया।

असुरोंका वध कर देवराजने उनकी सारी सम्पदा राजाओंको सौंप दी। दोनोंने आकर कुलगुरु भरद्वाज एवं इन्द्रका अभिवादन किया और शत्रुसे प्राप्त सम्पत्तिका विपुल भाग गुरुके चरणोंमें निवेदित कर उनसे विदा ली।

(ऋग्वेद)

# एक सदाचार-कथा

राजा हरिश्चन्द्रके कोई संतान न थी। उन्होंने पर्वत और नारद—इन दो ऋषियोंसे इसका उपाय पूछा। देवर्षि नारदने उन्हें वरुणदेवकी आराधना करनेकी सलाह दी। राजाने वरुणकी आराधना की और पुत्र-प्राप्ति कर उससे उनके यजनकी भी प्रतिज्ञा की। इससे उन्हें पुत्र प्राप्त हुआ और उसका नाम रोहित रखा। कुछ दिन बाद जब वरुणने हरिश्चन्द्रको अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण कराया तो उन्होंने उत्तर दिया—'जबतक शिशुके दाँत नहीं उत्पन्न होते, वह शिशु अमेध्य रहता है, अतः दाँत निकलनेपर यज्ञ करना उचित होगा।'

वरुणने बच्चेके दाँत निकलनेपर जब उन्हें पुनः स्मरण दिलाया, तब हरिश्चन्द्रने कहा—'अभी तो इसके दूधके ही दाँत निकले हैं, यह अभी निरा बच्चा ही है। दूधके दाँत गिरकर नये दाँत आ जाने दीजिये, तब यज्ञ करूँगा।' फिर दाँत निकलनेपर वरुणने कहा—'अब तो बालकके स्थायी दाँत भी निकल आये; अब तो यज्ञ करो।' इसपर हरिश्चन्द्रने कहा—'यह क्षत्रियकुलोत्पन्न बालक है। क्षत्रिय जबतक कवच धारण नहीं करता, तबतक किसी यज्ञिय कार्यके लिये उपयुक्त नहीं होता। बस, इसे कवच-शस्त्र धारण करने योग्य हो जाने दीजिये, फिर आपके आदेशानुसार यज्ञ करूँगा।' वरुणने उत्तर दिया—'बहुत ठीक।' इस प्रकार रोहित सोलह-सत्तरह वर्षोंका हो गया और शस्त्र-कवच भी धारण करने लगा। तब वरुणने फिर टोका। हरिश्चन्द्रने कहा—'अच्छी बात है। आप कल पधारें। सब यज्ञिय व्यवस्था हो जायगी।'

हरिश्चन्द्रने रोहितको बुलाकर कहा—'तुम वरुणदेवकी कृपासे मुझे प्राप्त हुए हो, इसलिये मैं तुम्हारे द्वारा उनका यजन करूँगा।' किंतु रोहितने यह बात स्वीकार नहीं की और अपना धनुष-बाण लेकर वन चला गया। अब वरुणदेवकी शक्तियोंने हरिश्चन्द्रको पकड़ा और वे जलोदररोगसे ग्रस्त हो गये। पिताकी व्याधिका समाचार जब रोहितने अरण्यमें सुना, तब वह नगरकी ओर चल पड़ा। परंतु बीच मार्गमें ही इन्द्र पुरुषका वेश धारण कर उसके समक्ष प्रकट हुए और प्रतिवर्ष उसे एक-एक श्लोकद्वारा उपदेश देते रहे। यह उपदेश पाँच वर्षोंमें पूरा हुआ और तबतक रोहित अरण्यमें ही निवास करते हुए उनके उपदेशका लाभ उठाता रहा। इन्द्रके पाँच श्लोकोंका वह उपदेश-गीत इस प्रकार है—

'रोहित! हमने विद्वानोंसे सुना है कि श्रमसे थककर चूर हुए बिना किसीको धन-सम्पदा प्राप्त नहीं होती। बैठे-ठाले पुरुषको पाप धर दबाता है। इन्द्र उसीका मित्र है, जो बराबर चलता रहता है—थककर, निराश होकर बैठ नहीं जाता। इसलिये चलते रहो।'

'जो व्यक्ति चलता रहता है, उसकी पिंडलियाँ (जाँघें) फूल देती हैं (अन्योंद्वारा सेवा होती है)। उसकी आत्मा वृद्धिंगत होकर आरोग्यादि फलकी भागी होती है तथा धर्मार्थ प्रभासादि तीर्थोंमें सतत चलनेवालेके अपराध और पाप थककर सो जाते हैं। अतः चलते ही रहो।'

'बैठनेवालेकी किस्मत बैठ जाती है, उठनेवालेकी उठती, सोनेवालेकी सो जाती और चलनेवालेका भाग्य प्रतिदिन उत्तरोत्तर चमकने लगता है। अतः चलते ही रहो।'

'सोनेवाला पुरुष मानो कलियुगमें रहता है, अँगड़ाई

लेनेवाला व्यक्ति द्वापरमें पहुँच जाता है और उठकर खड़ा हुआ व्यक्ति त्रेतामें आ जाता है तथा आशा और उत्साहसे भरपूर होकर अपने निश्चित मार्गपर चलनेवालेके सामने सतयुग उपस्थित हो जाता है। अतः चलते ही रहो।'

'उठकर कमर कसकर चल पड़नेवाले पुरुषको ही मधु मिलता है। निरन्तर चलता हुआ पुरुष ही स्वादिष्ठ फलोंका आनन्द प्राप्त करता है; सूर्यदेवको देखो तो सतत चलते रहते हैं, क्षणभर भी आलस्य नहीं करते। इसलिये जीवनमें भौतिक और आध्यात्मिक मार्गके पथिकको चाहिये कि बाधाओंसे संघर्ष करता हुआ चलता ही रहे, आगे बढ़ता ही रहे।

—इस सुन्दर उपदेशमें रोहितको इन्द्रने बराबर चलते रहनेकी शिक्षा दी है, जो उन्हें किसी ब्रह्मवेत्तासे प्राप्त हुई थी। गीताका मूल उद्देश्य आत्माका उद्‌बोधन है, जिसमें बताया गया है कि क्या अभ्युदय और क्या निःश्रेयस—दोनोंकी उन्नतिके पथिकको बिना थके आगे बढ़ते रहना चाहिये; क्योंकि चलते रहनेका ही नाम जीवन है। ठहरा हुआ जल, रुका हुआ वायु गंदा हो जाता है। बहते हुए झरनेके जलमें ताजगी और जिंदगी रहती है, प्रवाहशील पवनमें प्राणोंका भण्डार रहता है। कोटि-कोटि वर्षोंसे अनन्त आकाशमें निरन्तर चलते हुए सूर्यदेवपर दृष्टि डालिये, वह असंख्य लोक-लोकान्तरोंका भ्रमण करते हुए हमारे द्वारपर आकर हमें निरन्तर उपदेश दे रहे हैं। जो अपने मार्गमें आगे कदम उठाते बढ़ते जाते हैं, भगवान् उनका कल्याण निश्चित-रूपसे स्वयं करते हैं।

अन्तमें रोहितको वनमें ही अजीगर्त मुनि अपने तीन पुत्रोंके